Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४, अंक : ३६६; १ से १५ अक्तूबर, १९८४

कहानियां

8. गिरफ्तारी : श्रीलाल शुक्ल
13. वे तीन घर : काशीनाथ सिंह
25. भूख (मैक्सिकन) : मैक्स आउन
33. कर्फ्यू : राकेश वत्स
48. तबादला : गोपाल शेखरन
51. दिसंबर इक्तीस (ओडिया) : दुर्गामाधव मिश्र
54. रकम रेट : नफीस आफरीदी
60. बीवी भई कोतवाल : रामसरन शर्मा

▣ उपन्यास अंश

29. पगडंडियां : गोविंद मिश्र

अन्य आकर्षण

22. तुलसीदास चंदन घिसैं : राम राज काहू नहिं व्यापा : हरिशंकर परसाई
27. मथुरादास की डायरी : विधायक बिकाऊ हैं! : मथुरादास

विशेष आयोजन

41. पीढ़ियां आमने-सामने : डॉ. महीप सिंह, डॉ. हरदयाल, डॉ. रामदरश मिश्र, सुरेंद्र तिवारी, कुसुम अंसल और सुनीता जैन की अंतरंग बातचीत

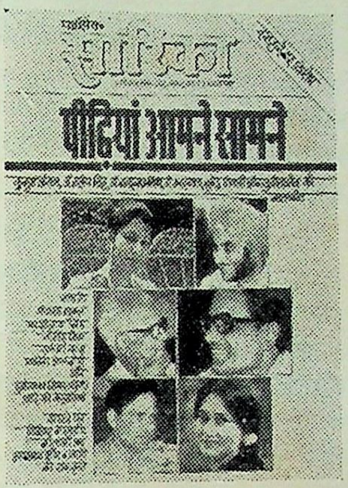

▣ आवरण : पवन महेंद्र

67. सीताओं का अपहरण और रावणों की संस्कृति : बलराम

लघु रचनाएं

15. बेचारा कालिदास : मोहन राकेश
18. गजल : मलिकजादा जावेद अहमद
24. युद्ध और शांति : खलील जिब्रान
28. गजल : विजयकिशोर मानव
30. समाचार पत्र—सन् 2084 : सी. राजेंद्र सिंह
32. मुद्दा : ज्वाला प्रसाद शर्मा
35. फर्क : देवेंद्र नारायण शर्मा इंद्रेश
36. नौकर : मातादीन खरवार
47. किस्से खोजा नसरुद्दीन के : लक्ष्मीचंद्र गुप्त
50. गजल : सत्यपाल सक्सेना
56. स्वर्ग-नरक : जिम बिशप
58. ठोरा बाबा : प्रियरंजन
63. गजल : रोहिताश्व अस्थाना
64. वही चेहरा : ए. असफल
68. चश्मा : मंजु गुप्ता

स्थायी-स्तंभ

6. आपकी बात
39. तस्वीर बोलती है : रघु राय
69. भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार
71. पखवारे की पुस्तकें : मधुरेश, महेश दर्पण, राकेश तिवारी
74. हलचल
● कई पृष्ठों पर चलते-चलते व व्यंग्यचित्र

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

व्यवस्थापकीय पता :
टाइम्स हाउस
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

संपादकीय पता :
सारिका
10, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष २४; अंक : ३६३

१६– ३१ अगस्त, १९८४

काशी का करारा तमाचा

काशीनाथ सिंह **'अपना रास्ता लो बाबा'** कहानी में शहरी बाबू को एक करारा तमाचा मारने में कामयाब साबित हुए हैं. ऐसा लगा कि कथा न पढ़कर स्वयं को पढ़ रहा हूं. सही उपयोग सही जगह पर है. प्रतीक्षा लोक-कथा विशेषांक की है. सारिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना सहित.

▣ कृष्ण थालिया, बंबई

झूठा सच

कहानियों में **'अपना रास्ता लो बाबा'**, **'प्रतिहिंसा'**, **'सूत्रगाथा'** और **'एक सिगरेट एक अगरबत्ती'**, लघु रचनाओं में **'सिद्धार्थ का जाना'** पसंद आयी. **सूत्रगाथा** कहानी में कहानी के बारे में संपादकीय में लिखी गयी बातें कहानी के अनुरूप नहीं हैं. छापने को और भी बहुत-सी रचनाएं मिलती होंगी. मेरी नजर में कम अज कम **मौसम, इनसे मिलिए, तुलसीदास चंदन घिसैं** सरीखी उबाऊ, और निरर्थक, प्रकाशित रचनायें छापना जरूरी नहीं. आप शायद पाठक के लिए इनको प्रकाशित नहीं करते हैं. इस तरह की रचनाएं तो अन्यत्र छपती रहती हैं, इन बातों को कथित साहित्यकारों, व्यंग्यकारों ने लिखा होता है, अंतर यही रहता है.

● सीतेशकुमार द्विवेदी, कोरबा

खिसियानी बिल्ली...

श्री 'सुलभ' का आलेख जहां उनकी **'कला-संगम'** संस्था की सदस्यता से उपजी प्रतिबद्धता की झलक दर्शाता है, वहीं शिक्षा विभाग द्वारा इस वर्ष उपरोक्त संस्था को मात्र बारह हजार रुपये अनुदान मिलने की खीज प्रकट

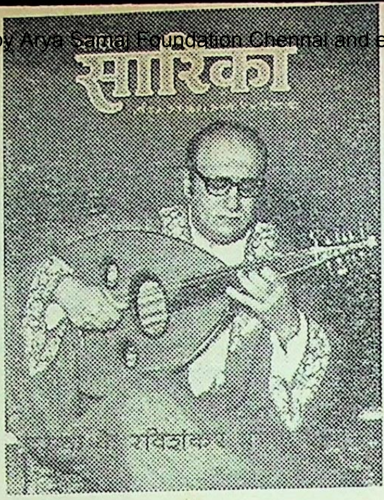

करता प्रतीत होता है, जो अन्य वर्षों की तुलना में इस संस्था को मिला सबसे कम सरकारी अनुदान है.

प्रेमचंद रंगशाला को सी. आर. पी. कब्जे से मुक्त करने हेतु रंगकर्मियों द्वारा छेड़े गए आंदोलन से इस संस्था ने अपने आपको जिस प्रकार अलग रखा, वह इस संस्था द्वारा पटना के रंगमंच का प्रतिनिधित्व करने के दावे को खोखला साबित करती है. सतीश आनंद और प्यारे मोहन सहाय जैसे महंत जो रंगकर्म को जागीर समझ बैठे हैं, सुलभजी की दृष्टि में पटना रंगमंच के कर्णधार हैं, तो इस महंती का विरोध स्वर 'सर्जना', 'अंतरंग', 'मित्तमा', 'आस्था', 'हिरावल' आदि संस्थाएं रंग-आंदोलन का कौन-सा उभार हैं?

● प्रभात ना. झा, पटना

सूत्रगाथा का सूत्र

मनीषराय की कहानी **'सूत्रगाथा'** ग्राम्य जीवन को छूती हुई निःसंदेह उत्कृष्ट बन पड़ी है. लेकिन योजनाओं की धांधली को लेकर अपढ़ ग्रामीण कितनी भटकन भोगता है, यह उजागर नहीं हो सका. इसमें तो उल्टे बेचारे बनवारी पर ही दोषारोपण कर दिया गया. कहानी का अंत कहानी के साथ न्याय नहीं कर पाया. लेखक का व्यक्तित्व कहानी पर हावी हो गया. आखिरकार लेखक ने चलते-चलते ऊपरवालों को मस्खा मार ही दिया. हरिशंकर परसाई (डिपार्टमेंट का सिस्टम) विभागों के यथार्थ भ्रष्ट आचरण को उजागर करते हुए रुचे.

● भगवती प्रसाद गहलौत, मंदसौर

नाम नया माल पुराना

से. रा. यात्री की कहानी **'रक्ति'** अपने आप में कुछ अलग प्रतीत हुई. विघटित मानवीय मूल्यों के उद्घाटन में दुहरे व्यक्तित्व का चित्रांकन काफी सुंदर और साफ है.

काशीनाथ सिंह ने **'अपना रास्ता लो बाबा'** कहानी में पुरानी चीज को फ्रेश माल की मुहर लगाकर बाजार में चलता कर दिया है. जहां संवेदना ज्यादा घनीभूत हो गयी है. अपनी बात के प्रस्तुतीकरण में लेखक चूक-सा गया है. अंततः वह कोई चुभती हुई बात नहीं कहता. बहुत ही हल्के ढंग से बात को चलता कर देता है, टाल देता है. और यहीं पर सारी संवेदना हवा हो जाती है.

● अरुण अंजलि, रांची

समाज का सच, आज का सच

अंक पढ़कर बहुत ही प्रसन्नता हुई. मनीषराय की कहानी **'सूत्रगाथा'** एवं काशीनाथ सिंह की **'अपना रास्ता लो बाबा'** दोनों ही कहानियां अत्यंत मार्मिक, रोचक व सराहनीय रहीं, जिनमें रचनाकारों ने जिस सरल व सुबोध शैली में आज के समाज का सजीवता से चित्रण किया है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं.

● रवि किरण चौबे, बंबई

...और पड़ता पड़ गया...

मथुरादास के **'पड़ता सिद्धांत'** का अध्ययन किया. जैसा कि उन्होंने भूमिका में कहा है कि भारत की कल्याणकारी, जनहितकारी, विकास और समृद्धि की स्रोत पूंजीवादी व्यवस्था का सिद्धांत है 'पड़ता'. मथुरादास इसे शुरू में कुछ गलत समझे.

'पड़ता सिद्धांत' यह बतलाता है कि साम, दाम, दंड, भेद या अदल-बदल जिस विधि से भी 'पड़ता' पड़ जाये उसी को 'पड़ता' कहते हैं.

● मनोज कुमार त्रिपाठी, बेगूसराय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच में डूबता-उतराता पटना

हृषीकेश सुलभ द्वारा लिखित '**समकालीन रंगमंच के बीच उभरता रंगनगर-पटना**' पढ़ने को मिला.

सुलभ जी ने शीर्षक तो दे रखा है—रंगचेतना के बीच उभरता रंगनगर—पटना परंतु पढ़ने के बाद प्रतीत होता है उभरने के बजाय पटना रंगमंच डूबने लगा है. रिपोर्ट के प्रारंभ में जुलूस प्रदर्शन तथा पूर्वाभ्यास की दिक्कतों को दर्शाकर रिपोर्ट की शुरुआत अच्छी हुई, फिर बाद में शिक्षा विभाग के अधिकारियों की खींचतानी और अन्य संस्थाओं को मिलने वाली सहायता पर जो रोष व्यक्त किया है, लगता है इस बार सरकारी अनुदान पर पलने वाली सुलभजी की संस्था की उदरपूर्ति नहीं हो पायी.

आगे पटना रंगमंच में सक्रियता के स्तर पर जिन नाटकों का उल्लेख किया गया है, उनमें क्या 'कलासंगम' की ही प्रस्तुति उत्कृष्ट और स्तरीय रही है तो फिर 'रंग-चेतना के बीच उभरता रंगनगर-पटना' न लिखकर 'रंग-संस्था—कला संगम' लिखना चाहिए था. क्या इन प्रस्तुतियों के अलावा माध्यम की 'बकरी' एवं 'आला-अफसर', अंकुर की 'दुलारी बाई' एवं 'खेल पोलमपुर' सर्जना की 'अब गरीबी हटाओ,' एवं 'पेपरवेट', पटना इप्टा की 'आदि विद्रोही स्पार्टकस,' 'सद्गति' एवं 'वृक्ष', कला त्रिवेणी की 'अंतहीन' उल्लेखनीय नहीं थीं.

अंतरंग के बारे में लिखकर इन्होंने पटना रंगमंच को जितना उभारा है यह तो समझा जा सकता है परंतु पटना रंगमंच की प्रस्तुतियों के संदर्भ में अंतरंग की प्रस्तुतियों 'इतिहास चक्र' एवं 'सगीना महतो' की चर्चा न करना इनकी मानसिकता को दर्शाता है. पटना इप्टा की प्रस्तुति 'महाभोज' की चर्चा करते समय इन्होंने जिस कलाकार के बारे में नशे में चूर होने की बात कही है वो बिल्कुल निराधार है. मैं भी इस नाटक से जुड़ा रहा.

पटना रंगकर्मियों के संघर्ष की कहानी कहते हुए सुलभजी ने बारिस में भीगते हुए जुलूस की बात कही है. क्या स्वयं सुलभ जी एवं जिन बड़े महारथियों की चर्चा (दो या तीन को छोड़कर) की है, वे जुलूस में थे?

वर्तमान परिवेश में कहीं के भी रंगक्षेत्र की चर्चा में 'नुक्कड़ नाटकों' का एक अपना ही महत्व है. खासकर पटना रंगक्षेत्र के लिए. जहां आये दिन नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन होता रहता है. परंतु सुलभजी ने प्रेक्षागृह से न निकलने की शायद कसम खा ली है. पटना इप्टा की नुक्कड़ प्रस्तुति की जो तस्वीर इन्होंने मंचित करार दी है, हाल में सर्जना पटना द्वारा आयोजित, 'नुक्कड़ नाटक समारोह' की इन्होंने चर्चा करने की आवश्यकता नहीं समझी जिसमें पटना तथा बाहर की संस्थाओं ने भी भाग लिया. इस दौरान रंगकर्मियों ने एक विशाल जुलूस भी निकाला. प्रेमचंद रंगशाला को सरकार के खूनी पंजों से मुक्त कराने की आवाज बुलंद की एवं हत्या की संस्कृति का विरोध किया गया. अंत में दर्शकों की जो बात कही गयी है वो बिल्कुल गलत है. आज पटना रंगमंच को पहले की अपेक्षा ज्यादा सही दर्शक मिले हैं. □

● **अनूप कुमार दूबे, पटना**

तस्वीर बोलती है

सारिका : अंक : 361

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार : 50 रुपये

हर सच को हरा जायेगी यह गांधी की बकरी
वैतरणी तर जायेगी यह गांधी की बकरी
सौ खून माफ कर सकती है यह गांधी की बकरी,
हर राह साफ करती है, यह गांधी की बकरी.

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

● साधना चौधरी, 197, कृष्णानगर, भरतपुर (राज.).

द्वितीय पुरस्कार : 30 रुपये

दो हृदयों के तार जहां भी जो जन जोड़ रहे हैं,
मित्रभाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं,
घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम रसायन,
खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुंदे वातायन.

—'दिनकर'

कु. रागिनी मालवीय, प्रवक्ता, के. कु. रा. बा. इ. कालेज, सुलतानपुर

तृतीय पुरस्कार : 20 रुपये

बहुत नाजुक जमाना है, जबां को बंद कर रखो,

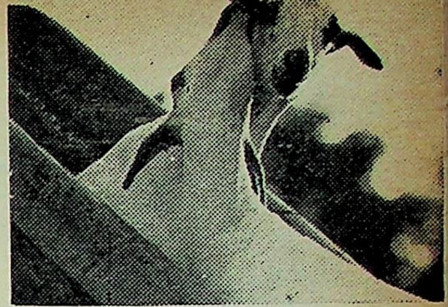

● छाया : सुनील सक्सेना

मसल मशहूर है, दीवार के भी कान होते हैं.

—अहमदी

● आरती प्रियदर्शी, 129, प्रेमपुरा, हापुड़-245101

प्रशंसित शीर्षक

चाहते तो किसी पत्थर की तरह जी लेते,
हमने खुद मोम की मानिंद पिघलना चाहा.

● मनोज कुमार द्विवेदी, बेगूसराय

पेट की आग तो सौ तरह से बुझ सकती है,
रूह को चाहिये बस एक मुहब्बत की मिठास.

● महादेव प्रसाद गुप्त, ललितपुर

हंसते भी नहीं, रोते भी नहीं,
खामोश नहीं, हम चुप भी नहीं,
यूं आंख उठाकर देखो जरा,
हम क्या-क्या नजारा करते हैं.

● अपूर्व घर, जबलपुर, (म.प्र.).

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरफ्तारी

श्रीलाल शुक्ल

छत के कोने में मुंडेर पर लोहे का एक पोल लगा था. उसके सहारे सड़क के खंभे से मकान में बिजली लायी गयी थी. कुछ दिनों से बिजली के बाहरी तारों में पोल के पास फंसाया गया हमारा घरेलू तार ढीला पड़ गया था. इससे तार की गांठ जरा-सी हवा चलते ही अपनी जगह से खिसक जाती और मकान की बिजली गायब हो जाती. बांस से उसे हिला-झुला दिया जाता तो बिजली आ जाती, पर उस हालत में वह ज्यादातर दुप-दुप करती रहती. मजबूर होकर तार को कसने के लिए बिजली मिस्त्री को बुलाया गया.

इस वक्त वह नौजवान मिस्त्री छत पर पहुंच गया था. घर का एक होनहार लड़का, जो ऐसे मामलों की देख-रेख करने में तेज था, उसे पूरी बात समझाने लगा. नीचे बरामदे में मैं आराम कुर्सी पर पड़ा था; न जाग रहा था, न सो रहा था. नींद के धुंधलके को वेधकर लड़के की बात से मुझे पता चला कि मिस्त्री अब बाहों के जोर से उचककर मुंडेर पर पहुंच रहा है.

ऊंघते हुए भी मेरे मन में हमेशा बसे रहने वाले डर ने सांप की तरह फन फैला दिया. मुझे लगा कि मिस्त्री जैसे ही तार की गांठ कसने की कोशिश करेगा, रबर की चप्पल और प्लास्टिक की किलेबंदी के बावजूद बिजली का झपटा खाकर वहीं झूल जायेगा. मैंने थोड़ा-बहुत साहित्य और समाज-विज्ञान पढ़ा है, पर यांत्रिकी के मामले में मैं बिल्कुल घामड़ हूं और उसका हर करिश्मा मेरे लिए अचंभे और आतंक की बात है. तेजी से चलती हुई हर मशीन किसी भी वक्त मुझे खौफनाक आवाज के साथ चूर-चूर होती नजर आती है. मोटर पर चलते हुए हमेशा दिल धड़कता है कि कहीं ब्रेक न फेल हो जायें और जब ब्रेक लग जाता है तो राहत मिलती है. रिवाल्वर के कारतूस हथेली पर रखते ही विस्फोट होने का खयाल आता है, बिजली मेरे लिए आज भी एक खतरनाक रहस्य है, उसका बटन दबाते हुए मैं हमेशा एक दिमागी झटका झेलता हूं.

मिस्त्री के बारे यह खतरा पल भर के लिए मेरे दिमाग में कौंधा और उसके बाद मैं फिर पहले जैसा ऊंघने लगा.

अब मैं बदल चुका हूं और जो चीजें मुझे पहले उकसाती दुख देती या उल्लसित करती थीं, उनकी जगह दूसरी चीजों ने ले ली है. पहले मैं महीनों जेल में रहा था जबकि मुझ पर कोई मुकद्दमा नहीं चला था. यह नजरबंदी भर थी. तब मुझे कोई दुख न हुआ था. बाद में अपनी कानूनी जिम्मेदारी न निभाने और असावधानी के कारण एक आदमी की जान लेने के जुर्म में मुझ पर ढाई साल मुकद्दमा चलता रहा. इस मुकद्दमे में मैं हवालात तक नहीं गया और आखिर में अदालत ने मुझे बरी कर दिया––जिसे मेरे वकील 'बाइज्जत' बरी किया जाना बताकर मुझे हमेशा बधाई और अपने को शाबाशी देते हैं. इस मुकद्दमे ने मेरे जिस्म और दिमाग की चूल-चूल ढीली कर दी है. लगान-वसूली के खिलाफ आंदोलन करने और चौराहे के किनारे बाजारू इश्तहारों के अंग्रेजी अक्षरों पर तारकोल पोतते हुए हिंदी का प्रचार करने में धर लिया जाना एक बात है, इन मामलों में गिरफ्तार होकर जेल जाने से मेरा जिंदगी के यथार्थ से सीधा सामना न हुआ था. पर जेल के बाहर रहते हुए भी उस मुकद्दमे ने मुझे जिस यथार्थ के गड्ढे में ढकेल दिया था, उससे बाहर निकलने पर मेरा रक्त प्रवाह आज तक सुन्न पड़ा हुआ है.

अब 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे, अपने सबसे बड़े नेता के साथ सुबह का नाश्ता या किसी अंतरराष्ट्रीय राज-

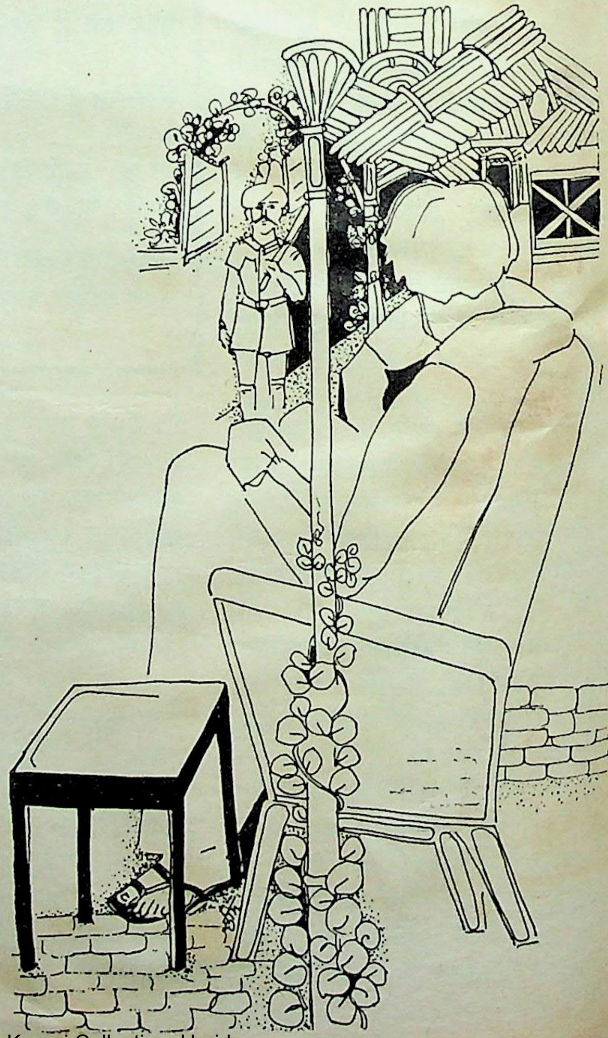

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम धारणा है कि सपने में जो दिखता है, वास्तविक जीवन में ठीक उसका उलटा घटता है. पर जो कुछ सपने में घट रहा हो, वह जब वैसे का वैसे वास्तव में भी घटने लगे तो स्थितियां एक खतरनाक मोड़ भी ले सकती हैं! –इन्हीं खतरनाक मोड़ों को रेखांकित करती कहानी. . . . .

नीतिक संगठन की ओर से यूरोप जाने का बुलावा मुझे नहीं हुलसा पाता. सच तो यह है कि कहीं कुछ भी नहीं हुलसाता; सिवाय मुन्नी के जो मेरे भतीजे की बेवा है और उसकी उंगली पकड़कर चलने वाले पांच साले के बच्चे के. जब की यह घटना है तब उसकी उम्र डेढ़ साल थी, वह हमेशा मुन्नी की गोद में झूलता रहता था, उसके फूले हुए गालों पर गुड़हल के फूलों की लाली थी, वह अपना हाथ उठाकर हमेशा 'मैं मैं' कहता रहता था. अपनी घरेलू जवान में मैं उसे गलफुल्ला कहता था. वह अब भी गलफुल्ला है, गोद में लटकने की और हाथ उठाकर 'मैं मैं' कहने की आदत उसने अब छोड़ दी है. वह अब गलफुल्ला कहे जाने पर बुरा मानना भी सीख रहा है. अपने को प्रशांत कहलाना चाहता है.

मुन्नी का असली नाम कुछ और है; रवींद्रनाथ की किसी कविता के प्रकरण से कोई शब्द लेकर उसका नामकरण किया गया था. पर वह नाम मुझे कलावीथियों की याद दिलाता है जहां हर नाम के पीछे 'जी' अपने आप लग जाता है.

मैं कलावीथियों में नहीं, घर में रहता हूं; इसलिए उसे मुन्नी कहता हूं. विधवा होते हुए भी वह दूसरी युद्ध-विधवाओं की त्यागमय, गौरवपूर्ण मुद्रा से अनजान है. वह आसानी से, अनायास मुस्कराती है, बिना दिखावे के मेरी देखभाल करती है, बिना बहस किये मेरी बातों को इस तरह काट देती है जैसे मेरी लिखित रजामंदी उसके पास पहले से ही मौजूद हो. मुन्नी और गलफुल्ले के साथ, अपनी दिमागी गुत्थियों के बावजूद, मैं कभी अपने को विस्थापित नहीं महसूस करता.

बहरहाल, यह आज की बात है. उन दिनों मुझमें कुछ बचा हुआ था. वैसे लोहिया के न रहने पर मैं राजनीति से रिटायर हो चुका था, या अखबारों की भाषा में कहें तो, उससे संन्यास ले चुका था. पर अखबारों ने ही शुरू-शुरू में मेरे इस पल्टे पर सबसे ज्यादा शंका दिखायी थी. उन्होंने लिखा था कि हथियार छोड़कर आत्मसमर्पण करने वाले डाकू का भरोसा भले ही कर लिया जाये, राजनीति से संन्यास लेनेवालों का भरोसा नहीं, क्योंकि वह उसके बाद संन्यास की ही राजनीति शुरू कर सकता है. जो भी हो, मेरे बारे में अखबारों का रुख बाद में रिआयत का हो गया क्योंकि उन्होंने समझ लिया कि मेरा काम बर्बरतापूर्ण स्थितियों के खिलाफ घर में बैठकर सौम्य और सुसंस्कृत लहजे में विरोध प्रकट करना भर रह गया है. यह वह दौर था जब मैं अखबारों में 'संपादक के नाम पत्र' शीर्षक के अंतर्गत सरकारी दफ्तरों के भ्रष्टाचार, दहेज के लिए बहुओं का दाह, टेलीफोन विभाग की नालायकी, नौकरशाही की घिस-घिस, रेल यात्रा की असुरक्षा जैसे विषयों पर ऐसे विचार व्यक्त करने लगा था जिनसे किसी की असहमति न थी. बाद में मुझे हत्यारा साबित करने की सरकारी कोशिश ने मेरे आगे इस प्रकार के विरोध की निरर्थकता भी उघाड़कर रख दी."

तो, उस दिन जो मेरे लिए सिर्फ आदत की मजबूरी या स्वभावगत आशंका थी और जिससे त्रस्त होते हुए भी जिसे मैं हमेशा निरर्थक मानता था, अचानक यथार्थ बन गयी. और वह ऐसा यथार्थ बनी जिसे आज भी मैं अपना ही समझकर याद कर पाता हूं.

मैं सो गया था. तभी अचानक छत पर से भयानक घिघियायी आवाज निकली और लड़के ने चीखना शुरू किया. मेरे छत पर पहुंचने तक लोग वहां पहुंच चुके थे और जब तक मुंडेर पर बेढ़ंगे तौर से गिरे हुए मिस्त्री और एक टूटे हुए बिजली के तार को देखकर मैं सही बात समझ सकूं, उससे दूर खड़े हुए लोगों की तादाद और उनका शोर बेसाख्ता बढ़ने लगा. उस शोर के बीच से दो बातें मेरी समझ में आयीं. एक थी : 'कोई नजदीक न जाये, बिजली के इंजीनियर और पुलिस के आने तक लाश को इसी तरह रहना चाहिए! ' और दूसरी : 'यह तार पहले ही से झूल रहा था. मैं जानता था, एक न एक दिन किसी को जयेगा.'

मुझे यकीन नहीं हो रहा था कि ऐसा हो सकता है. बचपन से मुझे बताया जाता रहा था, सपने कभी सच नहीं होते. उनका फल हमेशा दूसरी तरह का होता है. सपने में सांप देखा तो धन आता है, जिस्म की मालिश हो रही हो तो बीमारी आती है. सपने और जागने के बीच मैंने इस मिस्त्री को बिजली के झटके से मरते हुए देखा था, उससे मुझे घबराहट हुई थी और डर लगा था. ऐसा सपना असली जिंदगी में उसे हमेशा के लिए जिंदा रखने को काफी था. पर वही मिस्त्री इस वक्त बिजली के झटके से मरा पड़ा था. उसका काला–बहुत कम काला चश्मा नीचे छत पर पड़ा हुआ था. काली पतलून और एक सुनहरी टी-शर्ट पहले ही की तरह उसके जिस्म से, अपनी पुरानी चुस्त शिकनों के साथ, चिपकी थी. सिर्फ बाल पीछे झूल गये थे जिससे मत्थे का एक बेढ़ंगा निशान खुल गया था. उसका चेहरा टेढ़ा पड़ गया था और सिगरेट से धुंआये हुए ऊपर के दांत अश्लील ढंग से खुले हुए थे. उसके. . .पर छोड़िए, मुर्दे का नख-शिख-वर्णन सुनाने से क्या फायदा! बिजली के इंजीनियर और पुलिस के इंतजार में लोग मेरे इर्द-गिर्द जमा होने लगे थे और मुझसे बातें करने लगे थे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझसे कुछ सवालात भी भलमनसाहत के साथ पूछे जा रहे थे, जिनका मैं जवाब दे रहा होऊं या नहीं, मेरी भलमनसाहत का प्रदर्शन निश्चय ही उनसे ज्यादा असरदार था, क्योंकि लोगों की सहानुभूति मृतक को ही नहीं, मुझे भी मिल रही थी. पर मैं न पूरी तौर से कुछ सुन पा रहा था, न समझ. मैं इसी विस्मय के आतंक से सुन्न था कि जो मेरे सपने की कल्पना थी, वह अचानक सच कैसे हो गयी. मेरे लिए यह सपना उतना ही भयंकर था, जितना कि सपने में किसी नाग को देखना जो किसी को डसने जा रहा हो और चीखकर जागते ही मैं देखूं कि वह सांप के काटने से दम तोड़ रहा है. मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं अब भी सो रहा हूं या नहीं, तभी किसी ने पीछे से कहा, "पांच रुपये की किफायत के पीछे एक जान ले ली साले ने! अरे वाह रे नेता!" इसके बाद मुझे आसमान घूमता हुआ नजर आया.

होश आने पर मैंने अपने को कमरे में बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया. मुझे बताया गया कि मेरी तबीयत अचानक खराब हो गयी थी और भीड़ में मौजूद एक अर्ध-डॉक्टर ने मुझे कुछ दवा देकर आराम करने की सलाह दी थी. मैं थोड़ी देर बिना सपनों की नींद सो लिया था पता चला कि मिस्त्री की लाश को पुलिस पोस्टमार्टम के लिए ले जा चुकी है, टूटे हुए तार और पूरी मुंडेर के फोटो लिये जा चुके हैं, तमाशबीन अपने अपने घर, दूकान या दफ्तर जा चुके हैं, सिर्फ कुछ बेकार लड़के बंगले के फाटक के बाहर छुट्टा जानवरों की तरह यूं ही टहल रहे हैं.

मेरा यह बंगला कुछ पुरानी काट का है. बाहर लंबा-चौड़ा बरामदा और गोल मेहराबों वाला पोर्टिको है जिस पर बहुत पुरानी लतरें फैली हैं. उनमें से कुछ का नाम मुझे भी मालूम नहीं. सच तो यह है कि यह बंगला मेरा है ही नहीं, किराये का है. जिलों के हाकिम नेताओं को कम किराये के पुराने शानदार मकान हमेशा ही एलॉट करते रहते हैं. यही सरकारी जन-संपर्क है. उसी हल्ले में कई साल पहले, जब मेरी आवाज पर हजारों कार्यकर्त्ता कलक्टरी का घेराव कर सकते थे, एक प्रच्छन्न कांग्रेस-विरोधी जिला मजिस्ट्रेट ने यह बंगला मुझे किराये पर दे दिया था. यह किसी ट्रस्ट-वस्ट की संपत्ति था और इसका नाममात्र किराया वसूलने के लिए पहले एक मुंशीनुमा बूढ़ा आदमी आया करता था. कुछ दिन बाद उसका आना बंद हो गया और मैं लगभग भूल गया कि यह किराये का बंगला है. अब इसे मेरा परिवार अपना बंगला मानकर रह रहा है. जिस जागने और सोने की मध्यवर्ती गोधूलि में मैं जिंदगी बिता रहा था, उसके हिसाब से यह ठीक ही था, बंगला मेरा न होते हुए भी मेरा था, मेरा होते हुए भी मेरा न था.

बरामदे में मेरे आते ही दारोगा ने, जो अभी तक पोर्टिको में लताओं और दूसरी वनस्पतियों का मुआयना कर रहा था, आगे बढ़कर मुझसे कहा, "मैं तुम्हें गिरफ्तार करने आया हूं. चुपचाप थाने चले चलो."

मैंने उम्मीद की थी कि वे बरामदे में कुर्सियों पर बैठे होंगे, मेरे आते ही वे उठकर खड़े हो जायेंगे. उनमें से दारोगा आगे बढ़कर मेरा अभिवादन करेगा, मुझे 'आप' कहेगा और पूछेगा कि आपकी तबीयत अब कैसी है. उसकी जगह मैंने देखा, दारोगा की बात से भी ज्यादा बदतमीजी उसकी आवाज में है. वह पोर्टिको के पास मेरा रास्ता रोककर खड़ा हो गया. एक सिपाही मेरे कमरे के दरवाजे पर खड़ा होकर मेरे पीछे जाने की राह रोक चुका है. एक सिपाही फाटक पर खड़ा है और तीसरा मेरे दायीं ओर खड़ा होकर मुझे चुपचाप उनींदी आंखों से घूर रहा है.

मेरे लिए यह एक झटका जैसा था, पर घबराहट दिखाये बिना मैं पास की कुर्सी पर जाकर बैठ गया. दारोगा मेरे पास आकर खड़ा हो गया, बोला, "यह बैठने का वक्त नहीं है."

बरामदे के एक कोने में हमारे घर का वह होशियार लड़का अचानक प्रकट हो गया था. मैंने उसे पुकारकर कहा,

व्यंग्यचित्र : नीरद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अनूप को फोन मिलाओ बेटे."

"कौन अनूप?"

"कौन अनूप!" मैं गरजा, दारोगा की ओर इशारा करते हुए बोला, "इनके बॉस, एस. पी. साहब." लड़का अंदर चला गया, पर मुझे उसी वक्त लगा, टेलीफोन डाइरेक्टरी के जंगल में एस. पी. का टेलीफोन नंबर वह आसानी से न पा सकेगा. मैं फिर चिल्लाया, "फोन यहीं ले आओ."

दारोगा ने कहा, "सीधे थाने चले चलो. फोन-वोन वहीं से करना."

मैंने सौम्यता दिखाने की कोशिश की. कहा, "दारोगाजी, कोई गलतफहमी हो रही है. मैंने कोई जुर्म नहीं किया है." कहकर मैंने तंबाकू की पुड़िया निकालने के लिए कुर्ते की जेब में हाथ डाला.

मेरा हाथ जेब तक नहीं पहुंचा, उनींदी आंखों वाले सिपाही ने उसे बीच ही में कसकर पकड़ लिया. दारोगा से बोला, "यह खतरनाक पार्टी है. दस साल पहले जौनपुर की सभा में इसी ने पहले गोली चलायी थी. मेरी ड्यूटी वहीं पर थी."

बात सही थी, पर पूरे तौर से नहीं. मुझे अपना बचाव करना था, इसलिए, कई साल पहले, मैंने अपने रिवाल्वर से हवा में गोली चलायी थी. चारों ओर पुलिस के डंडे बरस रहे थे. मैं घायल होकर गिरना नहीं चाहता था. हवा में गोली चलाते हुए मैं भीड़ से बच निकला था. उसके बाद भीड़ पर पुलिस ने गोलियां चलायी थीं. आठ-दस लोग मरे थे. राजनीति छोड़ने का मेरे लिए यह भी एक कारण था. मैंने अपनी आंखों से देख लिया था, सब तरह की शांतिपूर्ण सिद्धांतवादिता के बावजूद आज की राजनीति का आखरी समाधान गोली और जेलखाने में ही होता है.

दारोगा ने मुझे झटककर उठा दिया. मेरी दोनों जेबों को थपथपाया. सिपाही ने मेरा हाथ छोड़ दिया. मैं कुर्सी पर दुबारा बैठने जा रहा था, तभी दोरोगा ने कहा, "खड़े रहो!"

मैंने दोहराया, "मेरा जुर्म क्या है?"

मेरे पास खड़े सिपाही ने कहा, "थाने चलो, वहीं पता चल जायेगा."

पर इस बार दारोगा ने कहा, "तुम्हारी वजह से एक आदमी की जान गयी है. बिजली के तार नंगे पड़े हुए हैं. इन्हें ठीक से रखना तुम्हारी जिम्मेदारी थी."

"पर यह तो मकान मालिक की जिम्मेदारी है."

"मकान मालिक तुम्हीं तो हो."

"मैं नहीं हूं, यह एक ट्रस्ट का मकान है."

"किस ट्रस्ट का?" दारोगा ने पूछा

बगल वाले सिपाही ने कहा, "कौन है साला ट्रस्ट का मैनेजर?" पीछे वाले सिपाही ने मेरी ओर इशारा करके कहा, "यही है."

इसके बाद मेरा सारा संतुलन गुम हो गया. मुझे लगा कि पीछे वाले सिपाही की बात सच भी हो सकती है. हो सकता है कि ट्रस्ट के कुछ मरणासन्न बुजुर्गों ने कुछ दिन पहले मिलकर मुझे ही मैनेजर तैनात कर दिया हो, उन्होंने मुझे सूचना भेजी हो और उनका खत डाकखाने में ही गुम हो गया हो. मकान मेरा है या ट्रस्ट का, ट्रस्ट का मैनेजर मैं हूं या कोई और—कुछ भी तय कर पाना मेरे लिए मुश्किल हो रहा था, पर दिमाग एक मामले में साफ था कि कोई भी लिखा-पढ़ा मिस्त्री एक तार को कसते हुए अगर बिजली का झटका खाकर अपनी जान खो सकता है तो कहीं उसमें भी खोट हो सकती है.

मैंने दारोगा से पूछा, "ट्रस्ट की बात बाद में होती रहेगी, पहले यह बताइए कि मिस्त्री का नाम क्या है? कहां का रहने वाला है?"

उसने जवाब दिया, "यह तो तुम्हीं बताओगे—थाने पर."

एक क्षण के लिए मेरा ध्यान बंट गया. लड़के ने बरामदे में आकर जोर से कहा, "फोन खराब है."

दारोगा ने कहा, "जिसे देखो कप्तान और डी. आई. जी. के नीचे बात नहीं करता. दुबारा अनूप-अनूप का नक्शा खींचा तो हथकड़ी डालकर थाने ले चलूंगा. भरे बाजार से टहलाता हुआ निकालूंगा."

पर मैंने इस पर ध्यान नहीं दिया. मुन्नी गलफुल्ले को गोद में लिये हुए कोने वाले बरामदे के छोर पर आ गयी थी. गुसलखाने की ताजगी से उसका चेहरा दमक रहा था, उसके लंबे बाल पीठ पर छितरे होंगे, पर सर को उसकी साड़ी के पल्लू ने पूरी तौर से ढक रखा था. गलफुल्ले ने मुझे देखते ही इशारे से मां की गोद में उचकना शुरू कर दिया. मुन्नी ने पूछा, "कुछ चाहिए?" मैंने इशारे से ही उसे अंदर जाने को कहा. गलफुल्ले ने 'मैं मैं' चिल्लाना शुरू कर दिया. दूसरे ही क्षण उसकी आवाज घर की अंदरूनी दीवारों में खो गयी. मैंने गहरी सांस ली.

दारोगा भी इससे दुचित्ता हो गया था. कुछ थमकर उसने पूछा, "ट्रस्ट का नाम क्या है?"

बहुत कोशिश की, पर नाम को मेरी याददाश्त ने सालों से खारिज कर रक्खा था. कहा, "मुझे नहीं मालूम."

पीछे से सिपाही बोला, "थाने पर एक मिनट में याद आ जायेगा."

जैसे बरामदा खाली पड़ा हो, इस अंदाज से उठकर मैं अपने कमरे की ओर बढ़ा. दारोगा से कहा, "आप लोग जाकर पहले मिस्त्री के बारे में पता लगाइए. मैं थाने नहीं जाऊंगा. मैंने कोई जुर्म नहीं किया है. आपको मेरा बयान लेना हो तो यहीं ले सकते हैं."

दारोगा की आंखें चढ़ गयीं. चेहरा अचानक खतरनाक हो गया. फाटक पर खड़े हुए सिपाही से बोला, "जल्दी से थाने जाकर जीप ले आओ, साथ में आर्मगार्ड भी. यह आदमी खतरनाक है." फिर मुझसे बोला, "अब चुपचाप कुर्सी पर बैठ जाओ. जरा भी हरकत की तो गोली मार दूंगा." कमर से रिवाल्वर खींचकर उसने अपने हाथ में निकाल लिया.

मैंने कहा, "मैं यहां नहीं बैठूंगा."

पीछे खड़े हुए सिपाही को धक्का देकर मैं तेजी से अपने कमरे की ओर बढ़ा. फाटक पर गहमागहमी बढ़ रही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्म और तेज हवा के एक झोंके का सा यह एहसास मेरे कानों और कनपटियों पर हो रहा था. अचानक मेरा बरामदा एक अंधेरे जंगल में तबदील हो गया. मैंने क्षण के एक खंड में देखा, वे मुझे जीप पर ले जाकर जंगल में छोड़ चुके हैं. मेरे चारों ओर तनी हुई राइफलें हैं. वे इस इंतजार में हैं कि मैं कब एक कदम इधर से उधर बढ़ूं और कब उनकी गोली मेरे कंधे को तोड़ती हुई दूसरी तरफ से निकल जाये. आज एनकाउंटर के लिए इन्होंने मुझे चुन रक्खा है. मेरी बचत कमरे में पहुंचने से ही है. . .

सिपाही मेरी कमर पकड़कर झूल गया था. मैं उससे छिटककर हटा. दारोगा ने मेरी ओर अपना रिवाल्वर तान दिया. बरामदे के कोने में खड़ा हुआ लड़का बड़े जोर से चीखा.

दारोगा ने कहा, "वहीं खड़े रहो." उसी वक्त सिपाही के बेंत का भरपूर वार मेरी पीठ पर पड़ा.

उसके बाद मेरी ओर से सारे फैसले अपने आप होने लगे. पूरी ताकत से मैं दारोगा पर झपटा. फोश गालियां देते हुए वह दो कदम पीछे हटा और रिवाल्वर की नली ऊपर की ओर करके उसने फायर किया. हम सब एक बेवकूफी भरे खतरनाक खेल की गिरफ्त में आ गये. बिना यह ध्यान दिये कि गोली छत से टकराकर किधर गयी, मैंने दारोगा को धर दबोचा और इस अचानक हमले से मुझे उसका रिवाल्वर छीनने में कोई दिक्कत नहीं हुई. दोनों सिपाही मेरी ओर बढ़ें, तब तक रिवाल्वर मेरे हाथ में आ चुका था. मैं देख चुका था कि इस रिवाल्वर को छोड़कर उनमें से किसी के पास कोई खतरनाक हथियार नहीं है. बरामदे की लंबाई में, हाथ का रिवाल्वर हिलाते हुए, मैं कई कदम पीछे चला गया. दारोगा के रुख से कुछ तिरछे और उसके सिर से बहुत ऊपर निशाना लेते हुए बरामदे के बाहर मैंने हवा में गोली चलायी. फाटक पर और घर के कोने-कोने में एक अजीब-सा शोर होने लगा.

पुलिस घबरा गयी है और उसका जवाबी हमला बहुत ही भयंकर होगा, यह मुझे साफ दिखाई दे रहा था. मेरे लिए यही रास्ता था कि इस फर्जी एनकाउंटर में अपनी जान बचाने के लिए दारोगा को मैं पहले ही खत्म कर दूं. शायद पुलिस के लिए भी यह अनिश्चय का क्षण था क्योंकि मुझ पर हमला करने के बजाय वे बचाव की हालत में आ गये थे. एक सिपाही खंभे के पीछे चला गया था, दूसरा कमरे के दरवाजे की ओट में. मैंने दारोगा पर रिवाल्वर तान दिया.

तभी, दारोगा के बहुत पीछे बरामदे के कोने में मुन्नी अपने बच्चे के साथ दुबारा दिखाई दी. वह खतरे के दायरे में थी, पर उसे निश्चय ही इसका पता न था. उसपर मेरी उचकती हुई निगाह पड़ी और मैं जितना देख सका, वही मेरे लिए काफी था. उसके चेहरे की बदहवासी ने मुझे झकझोर दिया. वह चीख रही थी पर उसका चेहरा ही एक चीख बन गया था. मैंने उसकी आंखों में बरामदे में फैले संपूर्ण बरबादी के उस दृश्य को देखा, जिसे मैं रचने जा रहा था.

गलफुल्ला गोली चलने की आवाज सुनकर मां की गोद से उतरने के लिए छटपटा रहा था. मेरी ओर मुंह करके वह मचलता जाता था और उसका दायां हाथ मशीन की तरह बार-बार ऊपर नीचे हो रहा था.

'मैं मैं' कहता हुआ बच्चा चीखता रहा. उस वक्त मैं नहीं समझ पाया कि वह रिवाल्वर का यह खिलौना हाथ में लेने को मचल रहा है.

पुलिस अब भी अनिश्चय में थी, सिर्फ दारोगा की गरज मुझे कुछ और न करने के लिए सावधान कर रही थी. पुलिस के तीनों आदमियों पर अपनी निगाह जमाये हुए, बच्चे के बेतुके उत्साह को झेलता हुआ मैं बरामदे के किनारे पहुंच गया. पुलिस वालों की ओर से अपनी निगाह हटाये बिना ही मैंने दो और हवाई फायर बाहर की ओर किये. उसके बाद रिवाल्वर की गोलियां खत्म हो गयीं. तब मैंने तेजी से घूमकर खाली रिवाल्वर लॉन में बहुत दूर फेंक दिया. वह दूसरे छोर पर जाकर एक झाड़ी के पास गिरा.

बच्चा अब भी 'मैं मैं' कर रहा था. सड़क से कई लोग बंगले के अंदर आ गये थे और बहुत से बरामदे में भी चढ़ आये थे. दारोगा के चेहरे पर गुस्सा था, पर अब बदहवासी नहीं थी. मैं सिपाहियों के हमले का इंतजार कर रहा था. अचानक, सिपाहियों को इशारे से अपने पीछे आने को कहकर वह बोला, "जो हुआ सो हुआ, अब तुम बंगले से बाहर नहीं जा सकते हो. तुम यहीं पर गिरफ्तार हो चुके हो. हवालात ले जाने के लिए हम दुबारा आयेंगे."

एक सिपाही लॉन के दूसरे छोर पर पड़े हुए रिवाल्वर को उठाने चला गया. मेरा तनाव खत्म हो चुका था. लोगों के बरामदे में आ जाने से मुझे लगा, एक दुःस्वप्न था जो टूट चुका है.

मैंने दारोगा से, और दूसरों को भी सुनाने की नीयत से, ऊंची आवाज में कहा, "हवालात में जाओगे तुम! तुम इतने लोगों के आगे मेरी हत्या करने जा रहे थे. मैंने सिर्फ तुम्हारे रिवाल्वर की गोलियां खाली की हैं." कुछ लोगों ने मेरी ओर से बोलना शुरू कर दिया था. मैंने अब मुस्कराकर कहा, "तुम्हें मेरा एहसान मानना चाहिए. मैंने तुमको हत्या के जुर्म से बचा लिया है." दूसरों की मौजूदगी भुलाकर मैं बरामदे के कोने में मचलते हुए गलफुल्ले की ओर चला गया. इस वक्त उसके गाल जाड़े के पहले संपर्क में कुछ ज्यादा ही चमक रहे थे.

दिन बीत गया. पुलिस ने पूरे मकान की घेराबंदी कर रक्खी थी. पर तब तक मेरे घर वालों ने कई काम कर लिये थे. फोन ठीक करा लिया था. डाक्टर आकर मुझे देख चुका था. मेरे स्वास्थ्य की तारीफ करके मुझे तीन-चार घंटे सुलाने का इंतजाम कर गया था. वकील के साथ दो-चार रिश्तेदार बराबर मौजूद थे ताकि इस बार गिरफ्तारी का सवाल उठे तो हर बात कानूनी ढंग से हो. मुझे मैजिस्ट्रेट के इजलास या घर जाकर आत्मसमर्पण की भी राय दी गयी थी ताकि पुलिस मुझे छू न सके और जमानत होने तक मैं सीधे जेल में रह सकूं. पर यह होना मुश्किल न था, क्योंकि घर के बाहर निकलने पर पुलिस मुझे पहले ही गिरफ्तार कर लेती.

पृष्ठ 63 पर जारी . . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

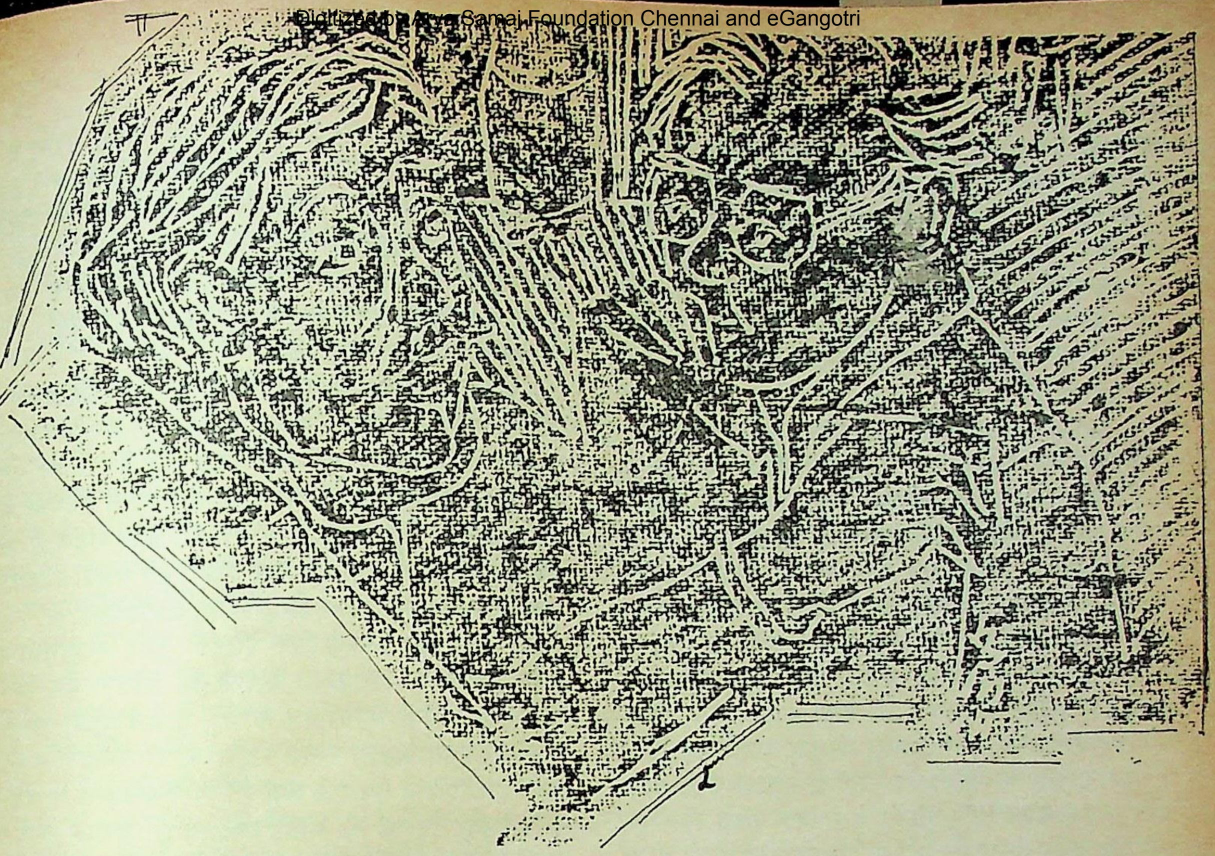

वे तीन घर

काशीनाथ सिंह

▣ अब वे अपने बारे में सोचने लगे थे, उन्होंने पेंतालीस सालों तक अपने चारों ओर और अपने भीतर जो महानताएं खड़ी कर ली थीं, उनसे उन्हें क्या मिला? और उन ऊंचाइयों ने उन्हें क्या दिया?. . . क्यों होता है ऐसा कि इंसान अपनी जिंदगी के लिए जिन आदर्शों को अपनाता है. . . वही उसके लिए आगे चलकर सबसे बड़ा प्रश्नचिन्ह बन जाते हैं! ——वक्त और उम्र के आरोह-अवरोह में जीवन की पृष्ठभूमि को रेखांकित करती कहानी.

अगर एकादशी हो, अमावस्या हो, पूर्णिमा हो, तीज हो, दशमी हो, इनके सिवा कोई त्यौहार हो और इनके भी सिवा गरहन हो तो गंगा किनारे घर मिलने का और ही सुख होता है. ज्यादा नहीं, बस छोटी-सी कोठरी हो, आगे खड़ा होने भर की जगह हो तो जिंदगी चाहे जितनी नरक हो, चल जाता है. मदन खुशकिस्मत थे कि उन्हें तीन कोठरियां मिल गयी थीं और वे भी ब्राह्मण होने के कारण सस्ते किराये पर.

वे बारजे पर खड़े थे और गरहन की भीड़भाड़ में लगातार उठते हुए कुछ शोर सुन रहे थे जिनसे संगीत की फिजां बन रही थी——

हाथी का दान
घोड़े का दान
सोने का दान
चांदी का दान
रुपये का दान
पैसे का दान
और कुछ न हो
तो बासी रोटी का दान.

सैकड़ों की तादाद में डोम थे और तसला बजा-बजाकर बैठकर, उंकड़ू होकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul K

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपककर, दौड़कर नहाकर जानेवाले धर्मात्माओं से मांग रहे थे. यह 'कोरस' जैसा एक स्वर और नीरस नहीं था, छिटपुट यहां-वहां लगातार चल रहा था. विज्ञान का विद्यार्थी होने के बावजूद वे साहित्य के शौकीन रहे थे और उनकी आंखों के आगे 'जाह्नवी' कहानी का वह दृश्य आ रहा था जिसमें ढेर सारे कौवे मुंडेर पर उड़ते हुए रोटी के टुकड़ों के लिए कांव-कांव कर रहे हैं और झपट्टा मार रहे हैं.

इस विचार से उनका मन दुखी हो गया और यह संगीत कानों को कड़वा लगने लगा. उन्हें उन विद्वानों पर गुस्सा आया जो 'यथार्थवाद' को हाल की घटना मानते हैं. जबकि सच्चाई यह है कि हर आदमी शुरू करता है 'हाथी' से और अंत करता है 'बासी' रोटी पर. लालसाएं शुरू होती हैं आसमान से और आ जाती है जमीन पर. और यह मांग, मांग का यह राग क्या (क्या कविता मांगों से नहीं पैदा हुई है?) बहुत पहले डोमों के ही किसी पुरखे के कंठ से फूटा होगा.

उन्होंने बचपन में डोमों को देखा था––सुम्मी और सबरी और डंडा लेकर खेत-खेत घूमते हुए. साही, लोमड़ी, नेवला, स्यार, सांप के बिल और मांद की तलाश करते हुए. कटे खेत में अन्न बीनते हुए, पुआल के गाज के नीचे की पैया पछोरते हुए, बांस की खपच्चियों में डलिया और मौजी और खंचियां बनाते हुए, नीम की नन्हीं-नन्ही सींकों से पत्तल जोड़ते हुए. सांपों के जिन बिलों के पास दूसरा फटकने की हिम्मत नहीं करता था, उन्हीं में से उन्हें खींचकर रस्सी की तरह घुमाते हुए. भूखा-नंगा होने और कदन्न खाने के बावजूद उनका बदन लोहे जैसा मजबूत होता था और वही अपने इकलौते त्योहार गरहन के रोज तसला बजा रहे हैं.

उन्हें लगा कि कहीं भी आदमी की ताकत का सही इस्तेमाल नहीं हो रहा है.

इसी वक्त उन्हें याद आये विपतराम. विपत उनके के पड़ोस के गांव की एक चमटोल के चमार थे और एक ही मदरसे में उनसे तीन जमात ऊपर पढ़ते थे और जाने कैसे बचपन से ही जैसे लड़कियां खेल-खेल में गाते-बजाते हुए सहेलियां बन जाती हैं––

मछरी की चुइयां,
झूर-झार भुइयां
हमरी दुअरिया
आया गुइयां. . .

वैसे ही वे भी ब्राह्मण होते हुए विपत के गहरे दोस्त बन गये थे. विपत ने आगे चलकर इनके जीवन का ढर्रा ही बदल दिया था. उन्हीं के चलते मदन ने कभी जनेऊ की मर्यादा नहीं रखी, 'कच्ची-पक्की' के चक्कर में नहीं पड़े, बाप की सारी शिक्षा के बावजूद किसी के घर 'सत्यनरायन' की कथा नहीं सुनायी, शादी-ब्याह और पूजा-पाठ नहीं कराया, तेरहीं के दिन ब्राह्मणों के झुंड को साथ लिये कहीं 'खाने नहीं गये और 'पांयलागी' सुनने पर किसी जजमान को 'जय' का आशीर्वाद नहीं दिया. उन्होंने ब्राह्मणों में कुजात कहलाना पसंद किया और सबसे अपना नाता तोड़ लिया.

विपत में ऐसी समझदारी आयी थी अपने मामा से जो बंगाल में कहीं गोदी मजदूर थे और छुट्टियों में हर बार हफ्ते-दस दिन अपने भांजे के साथ बिताते थे. विपत चाहे जिस दर्जे में पढ़ते रहें हों, अपनी जमात के सबसे तेज लड़के थे और चीजों को बहुत जल्दी पकड़ते थे. उनके बाप गांव के ठाकुर जुगुल सिंह के हलवाहे थे और मां उन्हीं के यहां रोपनी, बुआई और कटिया करती थी.

दोनों गांवों के बीच एक अखाड़ा था, वहीं इन दोनों की की बैठकी होती थी. उनके रेखमीन आयी थी और वे किताबों से हटकर गांव-जबार की बातें करने लगे थे. विपत बताते कि जमाने का रुख क्या है और खतरे के पहले ही उसे भांप लेना और उस पर अमल करना कितना बड़ा कदम है! कोई भी काम न करना, कांख में पत्रा दबाये हुए दरवाजे-दरवाजे घूमना, मुहूरत निकालना, सिद्धा-पिसान गंठियाना और लौट आना––यह सब कितने दिन चलेगा? इसी तरह मान लो, ठकुराई लोग हैं––सोबराज चमार हल जोतना बंद कर दें, वाढू कहार पानी भरना बंद कर दें, बब्बन धोबी कपड़े न धोयें, महमूद नाऊ बाल न काटें, रामू कहार कुल्हड़, गगरी न बनाये, तो इनकी बबुआई कहां जायेगी? झकझक तांजेब का कुर्ता पहने, नैनसुख की धोती डांटे छाता लगाये और पंप मचमचाते आंखों पर हाथ छाया किये जो सिवान की ओर ताका करते हैं––उसका क्या होगा?

उसका आज तक कुछ नहीं हुआ. लेकिन वह उमर थी, बातें दमदार थीं. इनमें जोश था और वह जोश सही बातों को लेकर था. दोनों ने इसी रास्ते पर चलने का फैसला किया. यह 'वैचारिक मुहब्बत' कुछ इतनी अस्वाभाविक, गहरी और रहस्यपूर्ण थी कि इसके बारे में उस इलाके में तरह-तरह की किवदंतियां फैल गयी थीं. मदन के पिता पंडित वदन बिहारी दुबे ने कई बार उनकी पिटाई भी की थी लेकिन अंत में हारकर चुप लगा गये थे. मदन को लगता था कि ऊंचे कुल और संस्कारों का होने के कारण जितनी मुश्किलों का सामना उन्हें करना पड़ता था, उनके गुरू विपत को नहीं. चीजों को सुनते-समझते उन्होंने जान लिया था कि 'खोना' उन्हें ही होगा क्योंकि 'पाया' भी उन्होंने ही है.

गांव की पढ़ाई के बाद वे बिछड़ गये थे––एक-दूसरे से. विपत शहर में ऐसे नेता के रूप में उभर आये थे जिनके बयान अखबारों में छपते थे और कभी-कभी बड़े नेताओं के साथ मंच पर खड़े भाषण करते, उनके फोटो भी दिखायी पड़ते थे. उन्हें इतना पता था कि वे एक-दो बार चुनाव के मैदान में भी उतर चुके थे लेकिन सफल नहीं हो सके थे. इस पर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ था. हां, रह-रहकर दिमाग में यह सवाल जरूर उठा था कि जब सबसे अधिक तादाद उन्हीं लोगों की है जिनके लिए वे लड़ रहे हैं तो फिर क्या वजह है कि वे हार गये हैं? लेकिन व्यवस्था को देखते हुए उत्तर पाने में उन्हें देर न लगती. तबादला पाकर इस नगर में आने के बाद से ही उनके मन में विपत से मिलने की इच्छा थी और आज के इस तमाशे ने उसे और भी तेज कर दिया था. ऐसा नहीं कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारा कालिदास

▣ मोहन राकेश

मैं अपने बारे में तो निश्चित रूप से कह सकता हूं कि मैंने एक शब्द भी ऐसा नहीं लिखा है जो वर्तमान से संबंधित नहीं है. आपने पहले कहा था—आपके विचार में मेरे उपन्यासों तथा कहानियों में तो आधुनिक सचेतता है जबकि मेरे नाटकों में संभवतया इसका थोड़ा-सा अभाव. मैं इस प्रकार के अंतर को स्वीकार नहीं करता क्योंकि जैसा मैं कह चुका हूं कि मेरे नाटकों के लेखन के पीछे भी वही सचेतता है जो मेरे उपन्यासों या कहानियों के पीछे. मेरे विचार में 'आषाढ़ का एक दिन' कालिदास के बारे में नहीं है. इसमें अधिकांश कल्पना है हालांकि मैंने सांस्कृतिक तथ्यों को नजरअंदाज नहीं किया है और मैंने एक उस शोध का उपयोग किया है जिसे मेरे खयाल से शायद अस्वीकृत कर दिया गया है. लेकिन यह विशिष्ट शोध मेरे इस विचार के अनुकूल था जिसके द्वारा मैंने कालिदास को काश्मीर का प्रशासक दर्शाया है, मैं इस नाटक में आज के लेखक की द्विविधा को चित्रित करना चाहता था—लेखक जो राज्य या इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा प्रस्तावित लोभ के प्रति आकर्षित होता है और दूसरी ओर कहीं अपने प्रति प्रतिबद्ध भी होता है. और, इसके लिए बेचारे कालिदास को बेकार ही नाटक में खींचकर ले आया गया और मैंने अधिकार-क्षेत्र के लिए उनके ऊंचे स्थान से उन्हें थोड़ा गिरा भी दिया. लेकिन नाटक समकालीन मानस के बारे में ही है. □

—प्रस्तुति : डॉ. भैरूंलाल गर्ग

अपने बारे में नहीं सोचते थे. उन्होंने अपने उसूलों की अच्छी-खासी कीमत चुकायी थी और इसका उन्हें कोई अफसोस नहीं था.

वे जिस मामूली-सी नौकरी में आये थे उसमें घूस मांगने की जरूरत ही नहीं थी. ऐसा भी नहीं कि लोग आया करें और अपने से दे जाया करें. इसमें जमाने से चली आ रही एक निश्चित रकम थी जो हर महीने बिना मांगे ही पहुंचा दी जाती थी और समय के साथ-साथ यह कोई तुच्छ और मामूली भी नहीं थी. लेकिन मदन ने शुरू से ही इसे इनकार कर रखा था और इसका नतीजा यह हुआ कि उनके मातहत कर्मचारी पीठ पीछे उन्हें 'बगुला हाकिम' कहा करते थे और अफसर बिला वजह जवाब-तलब करके डायरी खराब किया करते थे. कई बार निलंबन के खतरे भी पैदा हुए थे जिन्हें वे अपने स्तर पर झेल गये थे.

सिर्फ तनख्वाह पर गुजारा करने के दुष्परिणाम घर के अंदर भी भुगतने पड़ रहे थे. दुबाइन से उनके रिश्ते, विवाह के बाद से ही खराब होने शुरू हो गये थे और दोनों के बीच बराबर शीतयुद्ध जैसा तनाव रहा करता था इसकी उन्हें कोई बहुत ज्यादा परवाह भी नहीं थी. उन्हें अपने को दोषी ठहराने का कोई कारण भी नजर नहीं आता था क्योंकि वे समझाकर थक चुके थे—ऐसी हालत अकेले उन्हीं की होती तो एक बात थी लेकिन बहुत दूर जाकर दुनिया देखने की जरूरत नहीं है, अपने आगे-पीछे, अड़ोस-पड़ोस ही देख लो. कितनों से सुखी हो?

उनके बच्चे अच्छे स्कूलों का मुंह नहीं देख सके. कुछ तो इस कारण कि अच्छे स्कूलों का मतलब व्यवस्था के लिए मजबूत पाए तैयार करना है. ऐसे नौकर बनाना जिनके अपने दिमाग न हों और जो बैल की तरफ सिर्फ हराइयों पर चलते जायें, दूसरे इन्हें ऐसे स्कूलों में पढ़ना चाहिए जहां से ये जिंदगी की मुश्किलें समझ सकें, दूसरे बच्चों और उनके घर के हालात से वाकिफ हो सकें और खुद के लिए ही नहीं अधिक लोगों की बेहतर जिंदगी के लिए लड़ना भी सीखें.

उनके ऐसे ही उसूलों के कारण एक सयानी लड़की अनब्याही पड़ी थी. वह एम. ए. बी. एड. करने के बावजूद ब्याह के इंतजार में किसी न किसी विषय में फिर दाखिला ले लेती थी और पढ़ती जाती थी. उनकी जिद थी कि बेटी कुंवारी रहे या किसी के साथ भाग जाये, वे दहेज न देंगे. घर पर रहनेवाले दूसरे भाइयों से मदद भी नहीं मांग सकते थे वे क्योंकि अपने बूते उनसे नाता तोड़ चुके थे. और फिर जानते थे कि 'जजमानी' के सिवा और कोई विरासत उनके पास है भी नहीं. और 'जजमानी' 'कुछ भी न हो तो बासी रोटी का ही दान' से अलग कोई चीज लगती नहीं थी.

वे लोगों की नजर में 'पागल' भले हों लेकिन उन्होंने महसूस किया था कि 'सांच की आंच बे-अंदाज कड़ी होती है.' उन्हें कोई पसंद नहीं करता था—इतना जानते थे, लेकिन वे जहां कहीं पहुंच जाते, लोगों में एक दहशत-सी छा जाती, वे फुस-फुस करते और थोड़ी ही देर में हटते-बढ़ते नजर आते. जो उन्हें समझते, वे कृतज्ञ भाव से ऐसा सम्मान देते जैसा उनसे बड़ा ओहदे के हाकिमों को भी मयस्सर नहीं था.

उगरह होने के बाद जब डोम तितर-बितर हो रहे थे और अपनी बिछी हुई चादरें समेट रहे थे, उसी समय उन्हें विपत राम जैसा ही एक आदमी नहाकर सीढ़ियां चढ़ता नजर आया. वे बारजे से उचककर ताकने लगे. "बीजू!" उनके गले से घबराहट और खुशी में हांक निकली.

विपत का यह नाम सन् 62 के दिनों का था जब वे जमींदोज थे और इसी नाम से दोस्तों के यहां रहते थे. मदन संदेह से या भावातिरेक से पुराने दिनों का नाम बोल गये थे.

वह आदमी ठिठककर इधर-उधर ताकने लगा.

तब तक बारजे से कूदकर मदन के पास पहुंच गये थे. पहले उन्होंने गर्मजोशी से उससे हाथ मिलाया, फिर लिपट गये, "थिंक आव डेविल एंड डेविल इज देयर."

"रुको, तुम्हें ठीक से देख तो लें!" उन्होंने उसके दोनों कंधे पकड़कर अपने सामने खड़ा कर दिया.

वही लंबा छरहरा बदन, घनी काली मूछें, चमकती और मुस्कराती गहरी आंखें. नगर और उमर के कारण मामूली बदलाव आये थे बालों और पेट में. बाल सफेद हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे और सीने के नीचे एक हल्की-सी तोंद आ रही थी. बाकी सब ज्यों का त्यों था. मदन अपने घर ले जाने के लिए घसीटने लगे लेकिन विपत की जिद थी कि मदन पहले उनके घर चलें. उनका परिवार उन दिनों नहीं था. वे जिस जगह से यहां आये थे, बच्चे वहीं रहकर इस सत्र की पढ़ाई पूरी कर रहे थे. उन्हें भी लगा कि आज की छुट्टी का इससे बढ़िया इस्तेमाल और क्या हो सकता है! वे एक-दूसरे को ठेलते, धकियाते, झोंकते, गालियां देते, हा-हा हू-हू करते गलबहियां डाले एक स्कूटर के पास खड़े हो गये.

"क्या मतलब?" मदन ने खुशी और अचरज से पूछा, "तुम्हारा है यह?

"नहीं, तुम्हारा है." विपत ने ठहाका लगाया. उनकी आंखों में इतने दिनों बाद मिलने की खुशी छलकी पड़ रही थी. मदन ने उन्हें रोका और ठीक-से आगे-पीछे देखा. यह 'बजाज चेतक' था. रंग लाल था और ढांचे पर कहीं कोई खरोंच न थी. विपत ने बताया कि पिछले चुनाव में जुगाड़ किया था और क्षेत्र इतना बड़ा था कि साइकिल से हर आदमी तक पहुंचना नामुमकिन था. "यार, जहां लोगों की कारें बसें, ट्रकें और ट्रैक्टर दौड़ते हों, वहां अपनी यह सवारी ही काफी थी. आओ बैठो." उन्होंने मदन को बिठाया और चल पड़े.

"तू इधर कहां जा रहा है बे!" मदन ने पूछा.

गियर बदलते हुए विपत बोले, "अबे चल तो!"

"लेकिन घसियारी टोला तो उधर है."

मदन जब बरेली में थे, तभी किसी ने बताया था कि विपत ने इसी टोले में कहीं घर लिया है.

विपत रास्ते भर बोलते रहे, "देख, वहां अकेला मैं ही बाहरी था. दिन-रात सूअर घूमते रहते थे. कोई बच्चा यहीं टट्टी कर रहा है, तो कोई वहां. औरतें चौबीसों घंटे झांव-झांव करती रहती थीं. मर्द दारू और ताड़ी और गांजे का दम लगाकर आपस में और घर में मारपीट करते थे. हर घर की गंधाती नाली बहती हुई दूसरे घर के अंदर चली जाती थी. मैंने उनके बीच काफी काम किया, समझाया-बुझाया, पंचायत की, रात में क्लासेज चलाये—तुम शहर की गंदगी साफ करो और अपने नाबदान में रहो. समझाने पर तो हां-हूं करते थे फिर जस के तस. इसके साथ ही अपने दूसरे साथी भी वहां आने में हिचकते थे लिहाजा इधर चला आया."

"यह अच्छा ही किया कि साफ-सुथरी कालोनी में चले आये. लेकिन उनके बीच काम चल रहा है न?"

"उसका सवाल ही नहीं है दोस्त. वह तो जारी है और रहेगा. वहां का बच्चा-बच्चा जानता है. वहां रहते हुए मैंने जो सबसे बड़ा काम किया, उनकी 'यूनियन' बनायी. थी तो पहले से, लेकिन लस्टम-पस्टम चल रही थी. उसे मजबूत और कारगर बनाया. उन्हें उनके अधिकारों से परिचय कराया. अपनी मांगों के लिए लड़ना सिखाया, उनके भीतर सदियों से चला आ रहा 'दब्बूपन' भगाया, बहुतों की खराब लतें छुड़वायी और जानते हो, ये छोटे काम नहीं थे?"

मदन को सुनकर खुशी भी हुई और गर्व भी हुआ. उनके मन में अपने लिए कहीं-न-कहीं हीनता की भावना पैदा हो रही थी कि वे ही कुछ नहीं कर सके.

"अपन यार, उस तरह के नेता, न है, न हो सकते हैं. करना-धरना कुछ नहीं. बस दून की हांके जा रहे हैं. अपने गलत-सही कुछ ठोस मकसद रहे हैं और उनमें लगा हूं."

"चुनाव के क्या अनुभव रहे हैं तुम्हारे?" मदन ने 'स्पीड ब्रेकर' पार करके पूछा.

"अनुभव?" विपत हंसने लगे, "यार! वही तो एक चीज

■ व्यंग्यचित्र : विभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जो हासिल हुई. और होना भी क्या था? जीतने के लिए तो लड़े नहीं थे. अपने लोगों का मकसद था सिद्धांतों को लोगों तक पहुंचाना, सत्ता के चरित्र का पर्दाफाश करना, इसी बहाने सर्वहारा को एक जुट करना. आगे के लोगों के लिए जमीन तैयार करना. वरना, अपनी जात के कितने हैं? मेरा अनुभव यही रहा है कि चुनाव में वही जीतेगा जो या तो ठाकुर-बामन हो या सेठ-महाजन."

मदन को लगा कि यह अनुभव नहीं, अनुभवों का निष्कर्ष है. और नया तो कतई नहीं. इसमें असहमत होने के गुंजाइश ही नहीं. यह तो वे मानते थे कि जातियों को दर-किनार करके कुछ सोचा नहीं जा सकता.

"चुनाव तो जानते हो, आदमी का सिद्धांत नहीं लड़ रहे हैं. या तो जातियां लड़ रही हैं या गुंडे-बदमाश. जो बूथ पर कब्जा कर सकें, जीत लें. हां, लड़ने से हुआ सिर्फ इतना कि जिलाधीश, पुलिस अधिकारी और दूसरे सभी बड़े लोग जान गये हैं. पहुंचो तो कुर्सी छोड़कर खड़े हो जाते है. और सलाम कितने लोग ठोंक रहे हैं, इसे अपनी आंखों से देख रहे हो."

मदन को जरा-सा अटपटा लगा, "तुम बेईमानों और धनी लोगों को बड़ा आदमी बोल रहे हो?"

"नहीं समझा तुमने. मैं उनके बारे में उसी जबान में बोल रहा हूं जो सबके बीच प्रचलित है. वरना वे क्या हैं, इसे हम-तुम अच्छी तरह जानते हैं."

"यार, पद या धन से नहीं, आदमी बड़ा होता है अपने भीतरी गुणों से." मदन को जैसे चोट पहुंची थी और अभी वहीं अटके हुए थे.

"तुम्हारी यही आदत सबसे खराब है. किसी एक चीज को पकड़ लिया और झूल गये. सो भी बेमतलब. आओ, कॉफी पीते हैं."

विपत ने स्कूटर रोका और सामने के साफ-सुथरे रेस्त्रां में मदन को लिये-लिये घुस गये. मदन ने फर्श और मेज और दीवारों का मोजाइक देखते हुए कहा, "अगर हम किसी फुटपाथ पर चाय पीते तो ज्यादा अच्छा रहा होता. अच्छा इस अर्थ में कि खुलकर हा-हा हू-हू भी करते और गप्पें भी."

"ठीक कहते हो, चलो यह भी बेजा नही." विपत ने हामी भरी और सिगरेट मंगवायी, "तुम तो पीते नहीं."

उन्होंने सिगरेट जलायी और पुरानी यादों में खो गये, "बड़े बुरे दिन बिताये हैं हमने यार! जितनी जलालत झेली है हमने उसकी कल्पना नहीं कर सकते तुम. अपने या मेरे गांव में अपना दरवाजा छोड़कर कभी कहीं मुझे बैठते हुए देखा है तुमने? बामन के जाओ या ठाकुर के, खड़े रहो. बैठना हो तो मचिया या मौढ़ा कहीं से उपराओ और बैठ जाओ. कुंआ हम खोदें लेकिन हमें पानी पीना हो तो चुल्लू बनाओ, तब पियो. गुड़ भी देंगे तो ऊपर से गिरायेंगे या फेंकेंगे, लोक लो. अगर तुम हमारे घर पैदा होते तो पता चलता कि चमार होना क्या होता है?"

मदन दुर्भाग्य से वहां पैदा तो नहीं हुए थे लेकिन महसूस कर सकते थे. कॉफी आ गयी थी और आमने-सामने बैठकर दोनों पी रहे थे. उत्तेजना के कारण विपत का चेहरा दमकने लगा था. वे फूंक पर फूंक मार रहे थे और अंत में उन्होंने सिगरेट का टुकड़ा 'ऐश ट्रे' में घुसेड़ दिया. मदन ने गौर किया कि विपत का रंग पहले से कुछ साफ हो गया है और भीगे बालों में उलटे कंघी करने से चेहरा कसे हुए नगाड़े-सा तन गया है. उनकी बातें उन्हें अच्छी ही नहीं, सही लग रही थीं.

"हां, तुम रास्ते में क्या कह रहे थे?" उन्होंने कॉफी सुड़की और फिर मेज पर रख दी, "शायद डोमों के बारे में. आज तुमने उन्हें देखा और तुम्हारा दिमाग खराब हो गया. और मैंने? मैं डोमों को तो गहराई से नहीं जानता लेकिन तुम जिन्हें चमार कहते हो, उनके बीच पैदा हुआ हूं और काम किया है मैंने! गांव में भी और शहर में भी. गांवों में उन्होंने क्या-क्या नहीं किया है तुम्हारे लिए? तुम्हारी दीवारें खड़ी की हैं, उसके भीतर तुम्हें बसाया है, तुम्हारे खेत जोते हैं, उन्हें सींचा है, काटा है, खलिहान में ढोकर ओसाया-दांया है, उन्हें बखार में पहुंचाया है और फिर लौट गये हैं खाली हाथ. वे सुबह तुम्हारी चरनी पर आते हैं पैना के साथ और शाम ढले उसी पैना के साथ लौटते रहे हैं. और उनकी औरतें? उन्होंने तुम्हारी मां की कोख से तुम्हें जनमाया है, तुम्हारे नार काटे हैं, मालिशें की हैं, छातियों में दूध न उतरने पर तुम्हें अपना दूध पिलाया है और बरही के बाद तुम्हारे मां-बाप ने उन्हें तुमको छूने का हक नहीं दिया है."

उन्होंने प्याला खाली करके मेज पर रख दिया, "मैं बताऊं कि पहले जब शहर में, इसी शहर में आया था तो जिस कोठरी में रहता था उसमें उठौवा पाखाना था. मैं टट्टी करता था और बाल्टी साफ करके रख दी जाती थी. दो-तीन महीने बाद कभी एक दूकान के सामने बीड़ी पी रहा था कि एक लड़के ने हाथ जोड़ा. इसके पहले भी कई-एक बार उसे 'नमस्ते' करते हुए देखा था. मैंने पूछा, 'भई, तू है कौन?' उसने जब बताया तो मेरा जी 'धक्' से रह गया. इसलिए कि मेरे शरीर के सबसे घृणित, बदबूदार, रहस्यपूर्ण और अंतरंग हिस्से को, जिसे मैं सारी दुनिया से ही नहीं, अपनी बीबी तक से छिपाता रहा हूं—यह लड़का, अपने ही खून का एक लड़का इतने दिनों से सुबह-शाम ढो रहा है और मैं जानता तक नहीं."

वे थोड़ी देर के लिए चुप हो गये और सिगरेट की राख झाड़ने लगे, "लेकिन चिंता की बात यह नहीं, दूसरी है! आरक्षण के चलते हम में से जो भी अफसर या हाकिम हो रहे हैं, वे उस सारी जहालत और जलालत को भूलते जा रहे हैं और ठाकुरों-बामनों के बीच उठने-बैठने में गर्व अनुभव कर रहे हैं. मैंने एक चमार अफसर को अपने भाई-बंदों के एक मामले में दूसरों को समझाते हुए यह कहते सुना है, 'भई, जाने दो हटाओ! आखिर हैं तो चमार ही!' और क्या बतायें, तीन साल पहले यहीं थे नगर प्रशासक महंगी राम. हमारी झाड़ू पार्टी ने एक जलूस निकाला, अपनी मांगों को लेकर. हमने सोचा था कि हरिजन है, उनसे अधिक इन मांगों पर गंभीरता से कौन सोच सकता है? लेकिन साहब! लाठी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चार्ज करवा दिया उन्होंने. और एकदम शांतिपूर्ण जलूस पर लाठी-चार्ज और ऐसा पिटवाया कि पूछो ही मत!"

इन बातों से मदन को राहत मिली. मैदान में काम करनेवाले और कमरे में बैठकर चिंतन करनेवाले का फर्क साफ समझ में आया. उन्होंने महसूस किया कि लोगों के बीच काम करने से आत्मविश्वास तो पैदा होता ही है, सोचने-समझने में सफाई भी आती है.

वे जब कॉफी हाउस से बाहर आकर दुबारा स्कूटर पर बैठे तो चुप और गंभीर थे.

शिवाजी नगर में एक छोटे से मकान के आगे स्कूटर रुका.

"आओ!" विपत लोहे का फाटक खोलकर अंदर घुसे.

मदन ने खड़े-खड़े 'ड्राइंग रूम' का जायजा लिया. उन्होंने सामने ही दाढ़ी-बालों से घिरे ओजस्वी चेहरेवाली वह फोटो देखी जिसकी एक प्रति उनके कमरे की दीवार पर टंगी थी. बैठक छोटी, साफ-सुथरी और अच्छी थी. उसके आगे एक छोटा-सा लॉन था जिसमें दो बेंचें पड़ी थीं और जो खिड़की से दिखायी पड़ता था.

"यह घर किसका है?" उन्होंने पूछा.

"तुम्हारा है यार, पूछते क्या हो?"

ऐसा दूसरी बार कहा था विपत ने. मदन को याद आया कि गांव पर जब मेहमान या वरदेखुआ आते हैं तो बाबू साहब लोग भी हर चीज के बारे में ऐसे ही बोलते हैं, "यह आप ही का है." जी हां, वह भी आप ही का है!"

मदन बैठ गये और मेज पर पड़ी एक पत्रिका पलटने लगे. पंखे की हवा में अखबार के पन्ने फड़फड़ाने लगे थे इसलिए उसे उठाकर मेज के निचले खाने में रख दिया.

"कैसा लगा तुम्हें?" विपत ने पूछा.

"अच्छा है!"

"भई, तुम तो जानते हो. कम आयवालों के लिए विकास प्राधिकरण की ओर से जमीन मिल रही थी, सो ले लिया. इतने से अधिक की अपनी हैसियत ही कहां है? इसी मकान से पिछली गर्मी में बिटिया की शादी की. हम लोगों में भी लेन-देन, तड़क-भड़क और खान-पान की बातें चलने लगी हैं. मालूम है, मुझे कितना दहेज देना पड़ा था?"

"तुमने दिया ही क्यों?"

"मैं बिल्कुल नहीं देना चाहता था. कसम से कहता हूं, बिल्कुल नहीं. लड़केवालों ने कुछ मांगा भी नहीं. उन बेचारों को दोष नहीं दूंगा. लेकिन सबने कहा, कुछ तो अपनी इज्जत और नांव-गांव का खयाल कीजिए. नतीजा यह हुआ कि वह सारा टंट-घंट करना पड़ा जिनका विरोधी हूं. द्वार-पूजा पर अलग, आंगन में अलग, समधी को अलग, मिलनी अलग. मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि लड़के को और सामानों के सिवा 'विकी' देनी पड़ी. भई, जानते हो! अब तो साइकिल भी हमारे लोगों में सभी देने लगे हैं और 'बजाज' तक अपनी पहुंच नहीं."

मदन चुप लगाये रहे. उनसे 'हां' या 'ना' कुछ भी कहते नहीं बना. इस मामले में वे बोलते भी तो क्या बोलते!

ग़ज़ल

मशहूर हैं हर शहर में दरपन की तरह हम,
दुश्मन से भी मिलते नहीं दुश्मन की तरह हम.

छिप जायेंगे धरती में कहीं धन की तरह हम,
रह जायेंगे हर जेहन में उलझन की तरह हम.

सीता कोई आयी तो गवाही भी मिलेगी,
पाकीज़ा हैं ऋषियों के तपोवन की तरह हम.

महलों से सियाह रात की अंगनाई में अक्सर,
फेंके गये टूटे हुए बरतन की तरह हम.

बेबाक ना हो पाये कभी पेट की खातिर,
सिमटे रहे खुद्दार के दामन की तरह हम.

जावेद यही वक्त के माथे पे लिखा है,
खोयेंगे जवानी को भी बचपन की तरह हम.

▣ मलिकजादा जावेद अहमद

"रुको, कपड़े भी बदल लूं और तुम्हारी भाभी को भी बोल दूं कि देखो, कौन आया है!" वे उठकर अंदर चले गये.

भाभी को मदन ने देखा नहीं था. जिन दिनों साथ थे, उन दिनों विपत की शादी नहीं हुई थी. हां, इतनी देर में उन्हें इतना पता जरूर चल गया था कि बड़ी लड़की का ब्याह हो चुका है और दो छोटे बच्चे हैं जो कहीं खेलने गये हैं.

विपत जब वापस आये तो कमर में लुंगी थी और ऊपर बांहदार गंजी. बांह पर काले धागों में बंधा हुआ गुल्ली जैसा एक जंतर था जिसे उन्होंने उस जमाने में भी देखा था.

"कम्बख्त अभी तक चला आ रहा है?" मदन की बांह की ओर इशारा करते हुए हंसे.

विपत ने गरदन घुमाकर देखा और मुस्कराये, "यार! क्या करोगे, मां की निशानी है."

इसी बीच भाभी पायल बजाती हुई चाय के साथ हाजिर हुईं. उनके सिर पर आंचल नहीं था और खिचड़ीबालों के जूड़े में प्लास्टिक का 'क्लिप' लगा था. बिना बांह के ब्लाउज के ऊपर जार्जेट जैसी किसी चीज की साड़ी थी जिसके अंदर से लाल रंग का साया लहक रहा था. वे भरपूर स्वस्थ थीं और उनकी कुहनी के ऊपर बांह का गोश्त झूलकर थोड़ा लटक गया था. मदन ने मन ही मन अनुमान लगाने की कोशिश की कि जब शादी हुई होगी तो कैसी रही होंगी?

उन्होंने चाय रखी और विपत के बगल में तख्त पर बैठ गयीं.

"भाई साहब," उन्होंने परिचय की नौबत ही नहीं आने दी और शुरू कर दिया, "सबसे अच्छा यह है कि इधर में कोई आलतू-फालतू लोग नहीं हैं."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आलतू-फालतू' को घसियारी टोला के संदर्भ में विपत ने जैसे ही समझाना शुरू किया कि भाभी ने रोक लिया, "मतलब कि इधर बाजू में इसपटर साहब हैं और उधर बाजू में इनवर्सिटी के लीचड़ साहब. बह सामने के तीन घर छोड़ के बाकी महाल में बबुआन लोग हैं."

"तीन घर छोड़कर क्यों, वे कौन हैं?" मदन ने पूछा.

"ऊंह," मदन के बेवकूफी भरे सवाल से खीझकर, जिसकी उन्हें जरा भी उम्मीद नहीं थी, भाभी ने हिकारत से मुंह बनाया, "ऊंह! होंगे कोई. मंय का जानूं?"

उनके लगातार बोलने से विपत थोड़े संकट में फंसे लग रहे थे. उन्होंने सारी बातों को न सुनते हुए भाभी से मुसकराकर पूछा, "जानती हो, कौन हैं ये?"

"हमको एकदम से उरुवा (उल्लू) समझते हो का?" वे विपत की ओर घूम गईं, "इन्हें नहीं जानेंगे हम. ई वही हैं न जो पार साल पिछवाड़े लोकू सिंह के इहां बरतन चुराए रहे और तुम छुड़ाए रहे."

मदन ने ऐसा जोरदार ठहाका लगाया कि लान में बेंच पर बैठा हुआ कौवा डरकर उड़ गया. विपत भी माथा पीटते हुए हंसने लगे. भाभी ने तो पहले चकपकाकर उन दोनों को बारी-बारी से देखा फिर वे भी हंसने लगीं.

"अरे भाभी, चोर छोड़कर आपने कुछ और बनाया होता?" अपनी आंखें पोंछते हुए मदन बोले.

भाभी ने अबकी निर्भीक दृढ़ता के साथ उन्हें ऊपर-नीचे देखा. मदन की रूह थोड़ी देर के लिए कांप गयी.

"तो आप कोई दूसरे हैं क्या?"

मदन दोनों हाथ उठाकर हंसते हुए खड़े हो गये, "बस, बस! अब हम कुछ नहीं हैं."

विपत जब उठने के लिए भाभी को खोदने लगे तो वे 'हुंह' करके उठीं और फाटक पर खड़ी होकर बच्चों को पुकारने लगीं.

विपत लज्जित हो उठे थे, जबकि इसमें कोई ऐसी बात नहीं थी.

भाभी के जोर-जोर से गिनने की आवाज आयी—एक, दो, तीन, चार, पांच! और उन्होंने वहीं से चिल्लाकर किन्हीं पांच 'मनई' के आने की सूचना दी, फिर बच्चों को गुहारने लगीं.

विपत ने उझककर खिड़की से ही उन्हें बेंच पर बैठने के लिए कहा और वे बैठ गये.

"देखो! ऐसा है! उन्होंने अपने ब्याह के समय का किस्सा बताना शुरू किया कि जब आयी थीं तो एकदम अपढ़ और गंवार थीं. गांव में ठाकुरों के यहां गोबर-पानी का काम करती थीं और देश-दुनियां की कुछ खबर नहीं थी. धीरे-धीरे उन्होंने सभ्य समाज में उठना-बैठना, बोलना-चालना और पहनना-ओढ़ना सिखाया. अब वे बाहर भी रहें और लोग आयें तो संभाल लेती हैं.

"लेकिन इसमें तुम्हें शरमाने की कौन-सी बात है?" मदन ने कहा.

अब तक भाभी दोनों बच्चों को पकड़े लिये आ गयीं. बच्चे शायद सामने वाले घरों के बच्चों के साथ हो खेल रहे थे. वे गुस्से से अलफ थीं, विपत पर भी और बच्चों पर भी. विपत पर इसलिए कि उन्हें देखने की फुर्सत नहीं है और कोई मिल जाता है तो दिन रात बेमसरफ बकबक करते रहते हैं और बच्चों पर इसलिए कि इन्हें खेलने के लिए वही गंदे और आवारा बच्चे मिलते हैं. यह नहीं कि कुछ पढ़ें-लिखें. जब देखो तब गाली. जब देखो तब कौड़ी! वे किचकिचाकर बड़े वाले का कान ऐंठ ही रही थीं कि छोटे वाले की नाक बहकर ओठों के ऊपर झूल आयी. उन्होंने लपककर चिटकियों में वह नाक पकड़ी और दरवाजे के बाहर छिनककर चौखट में हाथ पोंछने लगीं.

"यह भी एक समस्या है. सफेदपोशों के बच्चे इनके साथ खेलते नहीं, आखिर ये जायें भी तो कहां जायें?" विपत ने हंसते हुए मदन से कहा.

"पढ़ते कहां हैं?" मदन ने पूछा.

"यहीं 'राज इंगलिश स्कूल' है पास ही में. विपत बोले "अच्छा, इधर आओ और अंकल को नमस्ते करो. हां, अब ठीक. नाक पोंछो अपनी और 'बाबा ब्लैकशीप' सुना दो तो! शाबाश!"

बच्चा 'अटेंशन' की मुद्रा में खड़ा हुआ और दीवार की ओर ताकता हुआ कुछ बाहर और कुछ मुंह में बोलता रहा.

"और इससे तेज यह है छोटा वाला. गणित का कोई भी सवाल पूछ देखो. पूछो!" विपत ने मदन से कहा.

"हटाओ यार, इन्हें खाने-पीने दो. जाओ बेटा." मदन ने बेमुरव्वती से कहा.

"नहीं यार, ये बुरा मान जायेगा, इसकी भी सुन लो. सुनाओ बेटा! क्या सुनाओगे? अच्छा, 'शोले' में गब्बर का डायलॉग सुनाओगे या 'मुगले आजम' में अकबर का? हां तो, तो क्या कहता है अकबर अनारकली से?" उन्होंने मदन की ओर देखकर कहा, "सुनो!"

बच्चा मदन की परवाह न करते हुए कुछ 'मरने-जीने' वाला डायलॉग बोल गया.

विपत ने दोनों की पीठ ठोंकी और अंदर हांक दिया.

"हां, अब बोलो, क्या कह रहे थे?" उन्होंने माचिस की पीठ पर सिगरेट ठकठकायी.

मदन कुछ कहने ही जा रहे थे तब तक पड़ोस के युनिवर्सिटी के 'लीचड़' दुबेजी दरवाजे पर आ खड़े हुए. विपत हाथ जोड़े लपके और उन्हें पकड़कर अंदर ले आये. गौरवर्ण और भव्य काय. उनके चेहरे पर विद्वता चेचक की तरह गहरायी हुई थी. विपत ने परिचय कराया और पूछा, "कहिये, कैसे तकलीफ की?"

दुबेजी ने अगले दिन होने वाली हड़ताल के बारे में बिजली-पानी की कठिनाई का जिक्र करते हुए पूछा, "हड़ताल के सिवा और कोई काम नहीं रह गया है कंबख्तों को?"

"छोड़ें यह सब. आप आज्ञा दें!" विपत ने मुसकराते हुए कहा.

आधे घंटे तक दुबेजी तरह-तरह से अपनी आज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पुरस्कार

प्रतियोगिताएं

प्रौढ़ शिक्षा पर पोस्टर के लिए द्वितीय राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता :

कलाकारों से उपरोक्त प्रतियोगिता के लिए पोस्टर डिजाइन आमंत्रित किए जाते हैं जिसमें निम्नलिखित भाषाओं में प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन हेतु एक छोटा-सा उत्साहवर्द्धक शीर्षक हो:

असमिया, बंगला, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उड़िया, सिंधी, तमिल, तेलुगु तथा उर्दू.

इस प्रतियोगिता का उद्देश्य प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए प्रेरणात्मक डिजाइन तैयार करने के लिए सृजनात्मक कलाकारों को प्रोत्साहित करना है ।

डिजाइन 2 रंगों से अधिक का न हो तथा पोस्टर का आकार 51 से.मी. × 76 से.मी. हो ।

पुरस्कार :

प्रथम पुरस्कार	5,000 रु.
द्वितीय पुरस्कार	3,000 रु.
तृतीय पुरस्कार	2,000 रु.

नवसाक्षरों के लिए साहित्य की 26 वीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता :

प्रतियोगिता के लिए लेखकों से निम्नलिखित भाषाओं में पाण्डुलिपियां आमंत्रित की जाती हैं:

असमिया, बंगला, हिंदी, गुजराती, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, सिंधी, तमिल, तेलुगु तथा उर्दू ।

इस प्रतियोगिता का उद्देश्य सृजनात्मक लेखकों को नव साक्षरों के लिए पाठ्य सामग्री (उपयुक्त रूप से सचित्र) तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करना है ।

पाण्डुलिपि 2000-3000 शब्दों तक सीमित हो तथा फुलस्केप पेपर पर एक ही तरफ खुले खुले एवं स्पष्ट अक्षरों में लिखी गई हो ।

पुरस्कार :

1000 रु. के 40 पुरस्कार उपरोक्त भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कृतियों को प्रदान किए जाएंगे ।

कोई प्रविष्टि शुल्क नहीं है । प्रविष्टि-पत्र तथा नियमों के लिए नीचे लिखे पते पर लिखें। इसके लिए अपना पता लिखा एक लिफाफा (24 × 10 से.मी.) भेजें जिसके ऊपर (अंग्रेजी/हिंदी में) लिखा हो: 'नव साक्षरों के लिए साहित्य की 26वीं राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता' अथवा "प्रौढ़ शिक्षा पर पोस्टर के लिए द्वितीय राष्ट्रीय पुरस्कार प्रतियोगिता ।"

प्रविष्टियां स्वीकार किए जाने की अंतिम तिथि (डाक द्वारा या निजी रूप से) 31 अक्तूबर, 1984 है ।

निदेशक,
प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय,
शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय,
ब्लाक नं. 10, जामनगर हाउस,
शाहजहां रोड, नई दिल्ली-110011.

dae

डीएवीपी 84/129

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाते रहे और मदन उनका ध्यान खींचने के लिए बीच-बीच में विपत से समय पूछते रहे. जब वे चले गये तो मदन ने कहा, "यार, इतनी देर से बाहर कुछ लोग बैठे हैं. शायद वे लोग जरूरी काम छोड़कर आये हों."

"छोड़ो जी!" विपत ने सिगरेट जलायी. उनके चेहरे पर झुंझलाहट थी, "कहने को ये सब अपने हैं. सोचो तो, कोइरी और हममें खास फर्क ही कहां है. और जानते हो, इनसे कोई अफसर कहे, बाबू साहब कहें तो दौड़कर लौकी, भिंडी, नेनुआ, करेला, पालक—जो कहो, दौड़ कर लायेंगे और हें-हें भी करेंगे. लेकिन मैं कहता हूं कि भैया, आते रहते हो, फालतू में बैठे रहते हो, कभी जरा ये बीज भी ले आओ, मौसम आ गया है. जरा लगा दो, तो नहीं करेंगे. क्यों? क्योंकि मैं उन्हीं लोगों के बीच का हूं. जबकि मैंने इन लोगों का एक संघ बनाया. ये गांव से खांचियों में सब्जी लेकर शहर आते हैं और लोगों के घरों तक पहुंचाने से पहले ही या तो पुलिस वाले लूट लेते हैं या चुंगीवाले या ठेकेदार! तो मैंने इनके लिए संघ बनाया, लड़ाइयां लड़ीं और उठो! देखो, मेरा 'किचेन गार्डेन'! जस का तस पड़ा है."

मदन उठ खड़े हुए, "नहीं, अब चलने दो. आज नहीं."

"एक मिनट आओ तो!" विपत अपनी ओर खींचने लगे.

मदन जिस तरह के आदमी थे या समझे जाते थे, निहायत ही झक्की और मुंहफट, उनके लिए इतना ही बहुत था. उन्होंने अपनी कलायी छुड़ायी और बेंच की ओर देखते हुए बाहर चले. जाने क्या सोचकर कुछ देर खड़े रहे. फिर ऐसे पलटे मानों कुछ छूट गया हो?

विपत दरवाजे पर खड़े थे जैसे जानते रहे हों कि वह आयेगा जरूर!

"विपत!" वे शुरू में कुछ हकलाये जैसे तय न कर पा रहे हों कि उन्हें क्या कहना चाहिए या कुछ कहना भी चाहिए या नहीं, "है यह कि मुझसे उमर में बड़े हो. मैं तुम्हारे आगे बच्चा हूं इसलिए कि तुमने दुनिया देखी है. हर तरह का तजुर्बा है तुम्हारा. मेरी बात का बुरा न मानना और अगर मान भी जाओ तो और अच्छा."

विपत को आंखें फाड़े अपनी ओर ताकते हुए देखकर वे हंसने लगे, "परेशान मत हो, तुम्हारा 'किचेन गार्डेन' फिर कभी देखेंगे. फिलहाल तो इन लोगों को दिखाओ. इस समय हम कुछ कहना नहीं चाहते थे. फिर सोचा, ऐसा न हो कि कल कहो—मदन साले ने भी दगा दिया. जानते हुए भी नहीं बोला. हो सकता है, मैं गलत होऊं लेकिन मुझे लग रहा है कि जहां हम रह के बरबाद हो चुके हैं, तुम उधर ही जा रहे हो. और अफसोस इस बात का नहीं है कि तुम वहां जाना चाह रहे हो, अफसोस यह है कि वहां जाने में तुम खुशी और संतोष का अनुभव कर रहे हो."

वे विपत की हथेलियों को अपने हाथ में लिए हुए खड़े रहे, फिर उनका कंधा थपथपाया और विदा लेकर धीरे-धीरे बाहर निकल आये. वे चलते हुए खुद-ब-खुद बुदबुदाये, 'मगर उन्हीं में सारे लोग ऐसे न होंगे. नहीं होना चाहिए.'

सड़क पार करते ही उनकी नजर सामने ठेले पर पड़ी. उन्होंने साठ पैसे की पचास ग्राम मूंगफलियां लीं, नमक की एक पुड़िया उठायी और फोड़ते हुए चले.

जब वे विपत के घर से चले थे तो उनमें एक खास तरह के स्वाभिमान और विजय का भाव था. वे हल्का अनुभव कर रहे थे और खुश थे. लेकिन पता नहीं क्यों, वे शुरू में थोड़े गंभीर हुए, फिर कोई अनजानी परेशानी महसूस की और उसके बाद उनकी आंखें डबडबाने लगीं. उन्होंने मूंगफलियां गिरा दीं, और सड़क के किनारे-किनारे चलने लगे.

अब वे अपने बारे में सोचने लगे थे. उन्होंने पैंतालीस सालों तक अपने चारों ओर और अपने भीतर जो 'महानतायें' खड़ी कर रखी थीं, उससे उन्हें क्या मिला? मकान? नहीं. जायदाद? नहीं. बाप और भाइयों का सुख? नहीं. बीवी और बेटों का? नहीं. उन ऊंचाइयों ने उन्हें क्या दिया? और वे किसलिए ऐसा करते रहे हैं? वे भी तो अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ा सकते थे, बीवी को गहनों-कपड़ों से लाद सकते थे. 'चेतक' खरीद सकते थे, बंगले में रह सकते थे, लड़की को बार-बार एम. ए. करने से बचा सकते थे.

वे बराबर फालतू की चीजों के बारे में सोचते रहे. समाज के बारे में, व्यवस्था के बारे में, सत्ता के बारे में, इनके जुल्म और उनके जुल्म के बारे में, आगजनी, बाढ़, सूखा, भूमैया, बेलछी, मुसहरी, मुठभेड़, बराबर इन सबके बारे में सोचते रहे. दिमाग खराब करते रहे और अपनी हरकतों के लिए लोगों में हास्यास्पद बने रहे.

जबकि वे भी हां, वे इन सारी चीजों के बारे में सोचते भी रह सकते थे और निश्चित और सुखी भी हो सकते थे.

सहसा वे चौंककर खड़े हो गये, कहीं वे विपत के रास्ते ही तो नहीं सोच रहे हैं?

उन्होंने जेब से रूमाल निकाला और उसे आंखों पर हौले-हौले ऐसे थपथपाया जैसे पानी का छींटा दे रहे हों. □

● न्यू जी-14, अरविंद कालोनी,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

—चलते-चलते—

एक बार मुल्ला नसरुद्दीन शहर के सबसे धनी आदमी के पास पहुंचे और जरूरी दुआ-सलाम के बाद बोले, "मुझे कुछ रुपया चाहिए."

"क्या करोगे?" धनी ने पूछा.

"हाथी खरीदूंगा!" मुल्ला ने जवाब दिया.

"लेकिन जब तुम्हारे पास उसे खरीदने के लिए ही धन नहीं है तो उसका भरण-पोषण कैसे करोगे?" धनी ने कहा और सलाह दी, "मेरी मानो मुल्ला, हाथी खरीदने का इरादा छोड़ दो. यह तुम्हारे बस का रोग नहीं है."

"मगर जनाब, मैं आपके पास रुपया लेने आया था सलाह मांगने नहीं!" मुल्ला बोले और चलते बने. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसीदास चंदन घिसें

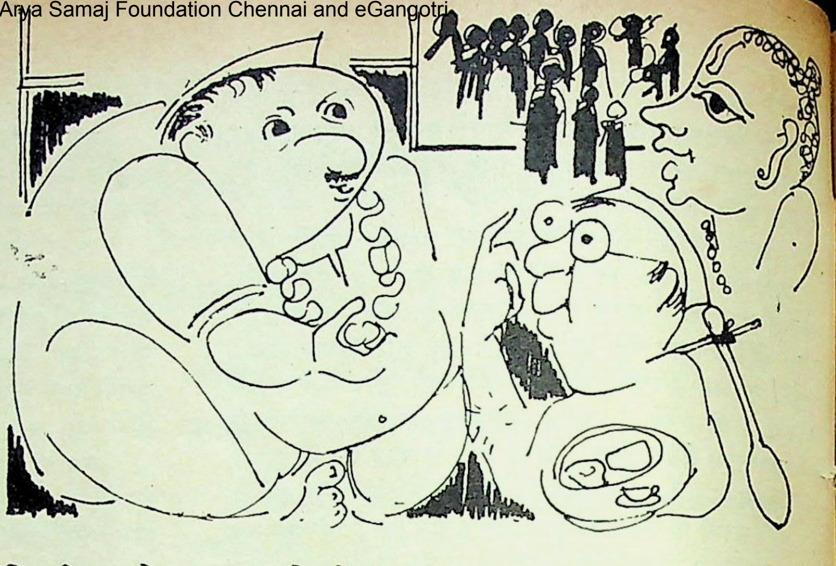

दिल्ली जाते वक्त, रास्ते में, इस बार तुलसी एक सांसद से टकरा गये और दिल्ली पहुंचे तो बोट-क्लब पर दहेज-विरोधी रैली करनेवाली महिलाओं से पाला पड़ गया! . . . मगर कैसे और किसलिए? . . . यह तुलसी की भाषा में ही पढ़ें . . .

राम राज काहू नहिं व्यापा

▣ हरिशंकर परसाई

तुलसीदास दिल्ली जा रहा था. एक भगत ने टिकिट ले दिया तो पहले दर्जे में बैठा था. बगल में एक संसद सदस्य थे. उन्होंने चमचों द्वारा पहनायी गयी मालाएं उतारीं और पसीना पोंछते हुए बोले, "बड़ी मुसीबत है. लोग मुझे इतना चाहते हैं कि तंग हो जाता हूं."

तुलसी ने कहा, "आदमी को सुखी रहने के लिए दो चीजें जरूरी हैं–भ्रम और मूर्खता. ये दोनों आपमें हैं, इसलिए आप खूब सुखी हैं. अरे नेता महाराज, ये मालाएं नहीं सांप हैं. जिन्होंने आपको ये मालाएं पहनायीं वे आपसे प्रेम नहीं नफरत करते हैं. मगर उन्हें आपसे काम कराना है, तो माला पहनाते हैं. मैं तो उनके चेहरे से समझ रहा था. जिस दिन आप राजपद पर नहीं होंगे, उस दिन यही लोग आपको जूते मारेंगे."

संसद सदस्य ने मुझे गौर से देखा. बोला, "आप साधु हैं, तो आपको बतलाने में कोई हर्ज नहीं है. मैं भ्रम में नहीं हूं. ये हरामजादे एक से बढ़कर एक बदमाश हैं. कुछ साल पहले मेरा जानी दुश्मन चुन लिया गया था, तो उसे भी ऐसी ही मालाएं ये पहनाते थे. यह राजनीति है स्वामीजी. कोई भगवत् भजन नहीं है. तमाम गुंडों, बदमाशों, तस्करों, टैक्सचोरों, दो नंबरियों को पटाकर रखना पड़ता है, तब चुनाव जीतते हैं. इस बार तो दंगा कराना पड़ा–जिसमें पचास आदमी मारे गये और दो सौ झोंपड़े जले. मैंने खुद गाय का गोश्त मंदिर में डलवाया था. पुजारी को पांच सौ रुपये दिये थे. बड़ी कठिन हो गयी है राजनीति."

तुलसी ने कहा, 'को न राज-पद पाय नसाई."

उसने पूछा, "क्या मतलब आपका?"

तुलसी ने कहा, "मतलब से तुम्हें क्या मतलब?"

उसने पूछा, "पहले दर्जे में जा रहे हो स्वामीजी. किस मंत्री के स्वामी हो? फाइव स्टार स्वामी हो कि थ्री स्टार? काहे की तस्करी करते हो. अफीम की या रुद्राक्ष की! कोई 'सीताराम' गन फैक्ट्री है कहीं क्या!"

तुलसी ने कहा, "आपका कोई अपना स्वामी है?"

उसने कहा, "हां है! हमारे कसबे के पहुंचे हुए साधु हैं. तंत्र-मंत्र सिद्ध हैं. उन्हीं के अनुष्ठान से चुनाव जीतता हूं."

तुलसी ने कहा, "मगर पिछली बार क्यों हार गये थे?"

उसने कहा, "अरे स्वामीजी, वह साला विरोधी 'फोर स्टार' साधु हिमालय से ले आया था. हमारा है विंध्याचल का 'टू स्टार' स्वामी. तो उस फोर स्टार स्वामी ने हमें हरा दिया."

तुलसी ने कहा, "याने आपके चरित्र, व्यक्तित्व, कर्म, जनसेवा, क्षेत्र का विकास, त्याग, तपस्या कोई काम नहीं आये? उस फोर स्टार स्वामी का जादू चल गया."

उसने कहा, "अरे महाराज, कुछ किया हो तो काम आये. घर-भरने से फुरसत किसे हैं. चरित्र,सेवा, त्याग, आपके रामराज में होता होगा. इन्हें आप सद्गुण समझते हैं, हम इन्हें बेवकूफी मानते हैं."

तुलसीदास ने कहा, "ठीक है, भारत भाग्य विधाता. बात यह है-

जाहि नाथ दारुन दुख देई,
ताकि मति पहले हर लेई."

संसद सदस्य ने पूछा, "दिल्ली जाना कैसे हो रहा है स्वामीजी?"

तुलसी ने कहा, "इस वक्त संसद का अधिवेशन चल रहा है. बड़ा मजा आता है. मैं संसद की दर्शक दीर्घा में बैठकर दिन-भर 'वाक आउट' देखता हूं तो बड़ा मजा आता है. फिर रोज बोट क्लब पर रैलियां होती हैं जिनसे देश की जनता की इच्छा मालूम होती है. अखबारों में पढ़ रहा हूं कि दहेज विरोधी और सख्त कानून के लिए महिलाएं रैली कर रही हैं. सचमुच दहेज समस्या बड़ी विकट हो गयी है."

संसद सदस्य ने कहा, "जनता जितना सख्त कानून दहेज रोकने के लिए चाहती है, उतना हम एकदम एकमत बना देंगे. परसों मेरा भाषण है, दहेज के विरोध में. आप सुनिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत जोरदार भाषण है. मगर दो महीने पहले मैंने अपने लड़के की शादी साठ हजार रुपये दहेज लेकर की है. लड़की भी संसद सदस्य की ही है. उनका भी जोरदार भाषण कल सुन लीजिए."

तुलसी दास चकित रह गया. मुंह से निकल गया...

तब माया बस जीव गोसांई,
नाचत नट मरकट की नाई.

अब वह जान गया था कि मैं तुलसी दास हूं.

सांसद ने कहा, "गुंसाईजी, चकित मत होइए. सौ में से पंचानवे संसद सदस्य दहेज लेते-देते हैं और वही दहेज विरोधी कानून बनाते हैं प्रभु. यही तो गांधीवाद है, यही समाजवाद है. यही आपका रामराज है. क्या लिखा है आपने—

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
रामराज काहू नहिं ब्यापा.

आप हम लोगो को देखिए—हमें दैहिक, दैविक, भौतिक कोई ताप नहीं सताता. हम तो यह कानून बना दें, कि जिसके मुंह से 'दहेज' शब्द निकले उसे गोली मार दी जाये. मगर हम दहेज लेंगे-देंगे. मैं कहता हूं—कितना भी कठोर कानून हो, इस आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था में दहेज बंद नहीं होगा. इस देश की जनता कितनी भोली है कि हम पाखंडियों से कानून बनवाती है और बेईमान प्रशासन से आशा करती है कि वह उसे लागू करेगा. अरे मजिस्ट्रेट और पुलिस कप्तान दोनों पार्टियों में खुद दहेज की रकम तय करवाते हैं. और कमीशन खाते हैं. अपना कलेजा कड़ा कर लीजिए गुसांईजी. बहरहाल, दिल्ली में कहां ठहरेंगे? मेरे साथ ही ठहर जाइए. मैं रहता तो हूं संसद सदस्य के होस्टल 'वेस्टर्न कोर्ट' में, पर वहां दो-चार मेरे साथ ठहर सकते हैं. वहां रहना किफायत का है. नाम मात्र का किराया. भोजन सरकार द्वारा. 'सब्सिडाइज' किया हुआ सस्ता. आप जो चाहें खाइए."

तुलसीदास उसी के कमरे में ठहर गया. सुबह उसने डबलरोटी, बहुत-सा मक्खन और सेब बुलवाये और कहा, "खाइए गोस्वामीजी, जितना मोटा डबलरोटी का टुकड़ा, उस पर उतना ही मोटा मक्खन का ढेर. आपको तो खाना ही नहीं आता. लीजिए, सेब खाइये. अरे, खर्च की चिंता मत कीजिए. बिल तो अपना काम कराने वाले चुकाते हैं. अपना कुछ नहीं जाता. यही समाजवाद है. यही राम-राज है—

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना,
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना.

तुलसी ने कहा, "मालूम होता है, 'रामचरित मानस' पढ़े हो. कौन-सा प्रसंग तुम्हें सबसे अच्छा लगता है?"

उसने कहा, "मुझे वह भाग सबसे अच्छा लगता है, जहां रावण सीता को फुसलाता है."

"तुम्हारा मन बड़ा पापी है."

उसने कहा, "नहीं प्रभु, मैं रामभक्त हूं. मगर इस फुसलानेवाले अंश में आपका काव्य बहुत ऊंचाई पर पहुंच जाता है. हम जैसे क्षुद्रों को उससे शिक्षा मिलती है. अच्छा गुसांईजी, मैं तो जाऊंगा संसद. आपका क्या कार्यक्रम है?"

तुलसी ने कहा, "मैं तो घूमूंगा. कमरे की चाबी 'रिसेप्शन' पर छोड़ जाऊंगा."

तुलसीदास पहुंचा बोट क्लब. वहां स्त्रियों की रैली थी. नारे लग रहे थे. दहेज कानून कड़ा करो. दहेज प्रथा मुर्दाबाद. बहू जलानेवालों को फांसी दी जाये.

अधिकतर प्रौढ़ा और वृद्धा स्त्रियां थीं. इतने में संसद से कुछ सत्ता पक्ष और विपक्ष के नेता निकल आये. इनमें मंच पर चढ़कर भाषण देने के लिए धक्का-मुक्की होने लगी. हर एक अखबारों में अपना भाषण छपाना चाहता था.

भाषण वगैरह खतम हो गये तो स्त्रियां छाया में सुस्ताने बैठ गयीं.

तुलसीदास ने एक वृद्धा से पूछा, "आपने तो बेटों की शादी बिना दहेज लिए की होगी."

वृद्धा ने जवाब दिया, "हमारे बेटों की शादी हुई थी तब तो दहेज विरोधी कानून नहीं था. तो रीति के हिसाब से दहेज लिया था. अब अपना कोई लड़का शादी करने को नहीं है तो इस रैली में आती हूं."

दूसरी प्रौढ़ा से पूछा, "आपका बेटा शादी के लायक है."

उसने कहा, "हां स्वामीजी, इसी साल उसकी शादी करनी है."

तुलसीदास ने कहा, "तो आप मेरे सामने कसम खाइए... हे भगवान, अगर मैं दहेज लूं, तो लड़के का बाप मर जाये."

उसे गुस्सा आ गया. बोली, "साधु न होते तो मैं चप्पलों से पीटती. मैं ऐसी कसम क्यों खाऊं?"

तुलसीदास ने कहा, "देवीजी, आप मुझे चप्पलें मार लें. मगर मैं कहता हूं कि आप झूठी और पाखंडिनी हैं. आप डटकर दहेज लेंगी. आपको इस रैली में आने में शर्म नहीं आती?"

वह नीचे देखने लगी.

एक तरफ सात-आठ प्रौढ़ाएं बैठी थीं. मैंने उनसे बात करने की कोशिश की तो उनमें से एक ने कहा, "देखिए जी, हम तो रोज इसलिए यहां आ जाती हैं कि घर पर दोपहरी नहीं कटती. यहां रोज कुछ न कुछ तमाशा होता है."

तुलसी रैली की नेत्री से मिला. वे वास्तव में समझदार और चिंतित महिला थीं. सो कहा, "देवीजी, इनमें अधिकतर महिलाएं तो झूठी हैं."

वे बोली, "मैं जानती हूं. मगर बिना हल्ला किये कुछ होता नहीं है, इसलिए जो मिलें उन्हीं को समेट लाती हूं. यह भी जानती हूं कि भीतर जो सम्माननीय बैठे हैं. उनमें भी अधिकतर झूठे हैं. पर कर्तव्य करती हूं."

"क्या आप सोचती हैं कि और सख्त कानून से दहेज बंद हो जायेगा."

वे बोली, "मैं इस भ्रम में नहीं हूं. हत्या की सजा मौत है. यह जानते हुए भी लोग हत्या करते हैं. मगर मैं यह सोचती हूं कि सख्त कानून के तहत अगर हम कुछ लोगों को सजा दिला सकें, तो डर से रोक तो लगेगी."

तुलसी ने कहा, "बात यह है कि समाज में थूकने की शक्ति होती थी. इससे दुराचार रुकते थे. यह शक्ति समाज खो चुका है. अब या तो लोगों का थूक सूख गया है, या वे थूक गुटक जाते हैं. आप समाज में थूकने की यह आदत फिर पैदा कीजिए.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे बोलीं, "मैं समझती हूं. पर व्यवस्था ऐसी है कि मानवीयता का लोप हो रहा है. खैर, अब कुछ लड़कियों में यह दम तो आया है कि वे शादी से इनकार कर बारात लौटा देती हैं."

तुलसी ने कहा, "इन लड़कियों का फोटो छपता है, तारीफ छपती है. ये वीर कहलाती हैं. पर यह आठ-दस दिन होता है. इसके बाद उस लड़की का और उसकी छोटी बहनों का क्या होता है, इसकी परवाह कोई नहीं करता. उस परिवार में कौन संबंध करे जो वर-पक्ष को जेल भेजना चाहता है."

नेत्री बोली, "इसके लिए हम एक 'पूल' बना रहे हैं, यानी ऐसे युवकों का स्टॉक रहेगा, जो इस तरह की साहसी लड़कियों से शादी कर लें."

तुलसी ने कहा, "इनमें से आधे से युवकों को लोभ खा जायेगा. एक बात और यह जो विकट प्रचार होता रहता है कि बहुएं जलायी जाती हैं. इसका एक नतीजा तो यह हुआ है कि लड़कियां शादी करने से डरने लगी हैं. ये सोचती हैं कि शादी की, और जलायी गयीं. दूसरे कई शहरों में ऐसे वकील तैयार हो गये हैं, जो स्त्री को जलाने की सुरक्षित विधि बताने लगे हैं—किस पोजीशन में कहां आग लगाना, किस हालत में अस्पताल पहुंचाना, पुलिस और डाक्टर को पैसा खिलाना. यह नया धंधा हो गया है."

उन्हें चिंतित छोड़, तुलसी सांसद के कमरे पर पहुंचा.

वहां एक चौबे जी चिंतित बैठे थे. कहने लगे, "गुसांईजी, राजा जनक तपस्या के या ज्ञान के कारण 'विदेह' नहीं हुए थे. उनकी चार लड़कियां विवाह के योग्य बैठी थीं इसलिए वे 'विदेह' हो गये थे—उन्हें देह की सुध-बुध नहीं रहती थी. मेरी दो लड़कियां हैं. दहेज की मांग के कारण मैं उनकी शादी नहीं कर रहा हूं तो मैं भी आधा 'विदेह' सा हो गया हूं. अच्छा, यह बताइये, दहेज विरोधी कानून में जब भी सख्ती लायी जाती है, दहेज की रकम क्यों बढ़ जाती है? कानून को इसलिए सख्त किया जाता है कि दहेज लेना बंद हो. पर उल्टे रकम बढ़ जाती है. खुद मुझे यह अनुभव है."

तुलसीदास ने कहा, "देखिए, वर का बाप नये कानून से बचने के लिए खर्च भी जोड़ता है न. आपने चालीस हजार में तय किया. इतने में कानून सख्त हो गया. तो वह कानून की पकड़ से बचने के दस हजार और जोड़ लेता है. चार-पांच महीने बाद फिर कानून में नयी धाराएं आ गयी तो दस हजार और बढ़ा देगा. पुलिस को खिलाने की जरूरत पड़ जाये, वकील लगाना पड़े."

संसद सदस्य ने कहा, "सुकुलजी, रेट बढ़ने का कारण है—मुद्रास्फीति. कितना काला धन रोज आता है. तो शादी के बाजार में भी मुद्रास्फीति बढ़ती जाती है. दो साल पहले जो सरकारी अधिकारी पचास हजार दे सकता था अपनी लड़की के लिए वर खरीदने को, वह अब अस्सी हजार देने को तैयार है, उसी मवेशी के. उसने इस बीच खूब पैसा खा लिया है. अरे बाजार में बैल, मुर्गा, बकरा तक के दाम बढ़ते जाते हैं, तो यह तो क्रय-शील मनुष्य हैं. इसे एक 'एसेंशियल कमोडिटी' (अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु) बना दिया गया है. लड़की को पति अनिवार्य है तो जो अनिवार्य है, वह अपनी ऊंची से ऊंची कीमत लेगा ही."

तुलसीदास ने कहा, "अगर लड़कियों की एक पीढ़ी कह दे कि हम पति के बिना काम चला लेंगी, अकेली रह लेंगी तो बाजार में इस पति नाम की जिंस की बिक्री 'क्लीअरेंस सेल' पर होने लगेगी. बल्कि मुफ्त में मिलेगी."

संसद सदस्य ने सेंडविच और चाय मंगा लिये थे, बोले, "खाइए स्वामीजी, बढ़िया सेंडविच. यही समाजवाद है, यही गांधीजी का राम-राज है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज काहू नहिं व्यापा.

ये 'काहू' हमारी बिरादरी है स्वामीजी!" □

लघुकथा

युद्ध और शांति

▣ खलील जिब्रान

धूप का मजा लेते हुए तीनों कुत्ते बतिया रहे थे. "यह बड़ा अच्छा हुआ कि हम श्वान-युग में हुए. कितने मजे से हम लोग जमीन, आसमान और पानी की यात्रा करते हैं. हमारी आंख, कान और नाक के आराम के लिए कितने उपकरण जुट गये हैं. . .!" एक कुत्ता कुछ इस तरह से बोला जैसे स्वप्न देख रहा हो. . .

दूसरा कुत्ता भी बोला, "कला के प्रति भी हम में झुकाव हुआ है. चंद्रमा को देखकर, हम अपने पुरखों से भी ज्यादा अच्छी तरह से स्वर-संधान करते हैं! पानी में अपनी परछाईं भी हमें पहले से बहुत बदली हुई, सुंदर नजर आती है."

तीसरे ने भी कुछ कहना ठीक समझा, "इस श्वान युग में विचार-साम्य भी कितना सुस्थिर है. . .!"

बातचीत अभी और बढ़ती, पर इसी बीच कुत्तों ने देखा कि एक कुत्ता पकड़ने वाला बढ़ा चला आ रहा है. तीनों हो उसे देख तेजी से भाग लिए. भागते हुए, जानते हैं तीसरे कुत्ते ने क्या कहा?. . .तीसरे कुत्ते का का कहना था, "जान बचानी हो तो जल्दी भागो! सभ्यता हमारे पीछे पड़ी है!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैक्सिकी कहानी

भूख

मैक्स आउन

मैक्सिको के उस सुदूरवर्ती क्षेत्र में कई सालों से पानी नहीं बरसा था. एक के बाद एक परिवार उस छोटे से कस्बे 'ला कापिल्या' को छोड़कर जा रहे थे, केवल पास्कुआल ही वर्षा की आशा में अपनी धरती को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था. और जिस दिन वह तैयार हुआ ठीक उसी दिन . .

ला कापिल्या को आप एक रेंच कहें, एस्टेट कहें या कोई आश्रम; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता. वहां छियासी लोग, छह घोड़े, आठ सुअर, कई सौ मुर्गियां, प्रेअरी के जंगलों से लाये लगभग सत्रह कुत्ते रहते थे. नंगी पहाड़ियां वहां से कोई तीस मील दूर छूट गयी थीं. वहां से दक्षिण, पश्चिम और पूर्व में लगभग उसी फासले पर आसपास के दूसरे रेंच 'ला क्रूस', 'लास कुएवास', 'एल एब्सीनो', 'ला गालेरा' थे. पहाड़ियां उत्तर की ओर फैली हुई थीं. वहां अगर पानी भी होता तो जिंदा रहा जा सकता था, लेकिन सालों से वर्षा नहीं हुई थी. क्यों? कोई नहीं जानता. लोग लगभग पांच साल से जिंदा रहने के लिए अपने जानवरों की बलि दे रहे थे. कुछ परिवार वहां से चले गये थे. मकानों की छतें गिरने लगी थीं. सिर्फ ईंटों की दीवारें ही अभी तक शेष थीं. अगर आप विश्वास कर सकते हों, तो कर लें कि लोगों ने उनकी दरारों में सूखी झाड़ियां ठूंस दी थीं.

पास्कुआल मोरेनो को पक्का भरोसा था कि बारिश होगी. उसकी पत्नी तोमासा लोपेस भी यही सोचती थी. पास्कुआल और तोमासा के बच्चों का अपना कोई विचार नहीं था. वे अभी पांच और छह साल के ही थे.

सिर्फ कुएं थे, जो दिन-ब दिन और गहरे होते जाने पर भी पीने के लायक पानी दे देते थे. अगर किसी और काम के लिए पानी की जरूरत पड़ती तो वे भी इनकार कर देते. वर्खेल, रोमेरो, एन्सीनो, पालो केमारो के परिवार वहां से चले गये थे. मोरेनो, तेकोलोते, कोनेखो, बार्रागान के परिवार यह सोच कर वहीं रुक गये थे कि हमेशा ऐसा ही नहीं रहेगा. वे बहुत कम बोलते थे. सिर्फ बच्चे ही इकट्ठे होकर आसपास आवारा-गर्दी करते रहते थे. हर पंद्रह दिन बाद पास्कुआल यह देखने के लिए 'ला गालेरा' चला जाता कि क्या कुछ मिल सकता है. वह अपने साथ कुछ मकई का सत्तू (थोड़ा पीने के लिए. . . लोबिया, हालांकि बहुत कम, जो वहां काफी था) और नमक, और कुछ जड़ियां, जो वह रास्ते में तोड़ लेता था, ले आता. वह समय भी आया जब 'ला क्रूस,' 'लास कुएवास', 'ला गालेरा' में भी कुछ नहीं बचा. दुनिया दूर हो गयी थी तब.

जिस दिन पास्कुआल यह खबर लेकर लौटा कि 'ला गालेरा' के लोग भी दूर चले गये हैं तो वर्खेल का परिवार भी वहां से चला गया. भूख बहुत अधिक बढ़ गयी थी. जब बच्चों ने भी खेलने के लिए बाहर निकलना बंद कर दिया तो पास्कुआल मोरेनो ने भी मेस्कताल देल ओरो जाना तय कर लिया. वह जगह नब्बे मील दूर थी, लेकिन वहां सब कुछ था. तेकोलोते–परिवार का मुखिया भी उनके साथ हो लिया.

CC-0. In Public Domain. Guru...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे शरीक भाई थे और उनकी आपस में पटती भी बहुत थी. कोनेखो और बार्रागान परिवारों के लोग अलग किस्म के लोग थे. अब उनके साथ बच्चे नहीं थे. वे या तो चले गये थे या मर गये थे. कोनेखो परिवार में चार सदस्य थे, और बार्रागान-परिवार में तीन. सभी शुष्क थे. उनकी उम्र चालीस और पचास के बीच थी. सिर्फ बार्रागन परिवार की बड़ी महिला को यह मालूम नहीं था कि उसकी उम्र क्या है. उसकी कमर हमेशा झुकी रहती थी.

तेकोलोते को मस्किताल देल ओरो में एक जानकार मिल गयी, जिसकी लुहारगिरी की दूकान थी. वह उसके पास रुक गया. उसने कुछ मकई खरीदी और शरीक भाई को अपने परिवार के लिए इस संदेश के साथ दे दी कि मौका मिलते ही वह आ जायेगा. पास्कुआल मोरेनो को जमीन के अलावा बची अपनी बीवी की संपत्ति, झुमके बेचकर जो कुछ मिला, उससे उसने कुछ नमक, लोबिया, मकई, सूखा मांस और लाल मिर्च खरीदी और लौट पड़ा. उसने महससूस किया था कि बारिश होगी. उसे निश्चय ही था. उसने अपने साथी से यह बात कही थी. तेकोलोते जबान का काफी कड़वा था. उसने उसे जवाब दिया, "इस तरह की बात का कोई फायदा नहीं है. सब बकवास है. जब लोग मूसलाधार बारिश की बात करते हैं, तब भी पानी नदारद होता है. यहां बारिश का इंतजार करूंगा. हम जो कर सकते थे, वह हमने कर लिया."

■ व्यंग्यचित्र : बदर

पास्कुआल जड़ रह गया था.

"नहीं भाई, नतीजा निकालना अच्छी बात है, लेकिन इतनी दूर की हांक नहीं."

"लेकिन यह उधार लिये हुए वक्त में काम करना है. वहां सब हमारा है."

"बस, अब बात खतम."

पास्कुआल के पास जो भार था, उसके बावजूद उसे वह लंबा रास्ता बहुत कम लग रहा था. वह अपनी पीठ पर तोमासा की दोहरी हुई खुशी, अपने बच्चों का गोल-गोल घूमती हुई आंखें लादे था. वे खायेंगे और फिर वह क्षण आयेगा जब वह खुशी से मर जायेगा. खुदा के घर देर है, अंधेर नहीं.

तीसरे दिन अंधेरा होते-होते पास्कुआल ला कापिल्या के मैदान में पहुंच गया. उसकी कमर थक गयी थी.

वहां से वह अपने घर का अनुमान लगा सकता था! रोशनी की आखिरी किरणों से! लेकिन, वह अपने साथ छह मोमबत्तियां लाया था. अब वह बारागिनों के टूटे-फूटे सूअर बाड़े तक पहुंच गया.

किसी की ओर ध्यान दिये बिना सुअर ऊपर पड़े थे. सिर्फ बार्रागान-परिवार ही गया है या कोनेखा परिवार भी चला गया है, वह नहीं जानता था. जब वह वहां से चल सकने की स्थिति में आया तो चांद आकाश में एकदम ऊपर आ चुका था. उसने उसे बादलों के बिना कभी नहीं चाहा.

पास्कुआल पहल करने वाला आदमी कभी नहीं रहा. उसने हमेशा इंतजार किया कि कुछ घटे. एक दिन कुछ नहीं हुआ तो दूसरे दिन होगा! सिकुड़े हुए पंख, उसने समेट लिये थे. किसी समय उसे बेचारा कहा जाता था, हालांकि यह अच्छा नहीं था. कोई कारण नहीं था लेकिन उससे लगता था कि इससे कोई बचाव नहीं है. उसे ठीक कर पाना असंभव है. किसी बड़ी बात की तो चर्चा क्या, उसने कभी किसी की उंगली भी नहीं दुखायी, लेकिन अब देर हो चुकी थी. क्या किया जाये? इस समय घर पहुंचा जाये. उसमें सहानुभूति उमड़ आयी थी. उससे भी ज्यादा उसकी आत्मा दुखिया गयी थी. अन्याय उसके पेट को बलबला रहा था. तोमासा क्या कहेगी?

उसने कुछ नहीं कहा. बड़ा भरा पड़ा था.

"सिर्फ भूख से."

"बार्रागानों ने मेरा सब कुछ छीन लिया है."

उन्होंने उसका सब कुछ छीन लिया था. आसमान भी उन पर नहीं फटा.

उन्होंने सूखी घास, लकड़ी के टुकड़ों, चटाइयों, मेज, बेंच का ढेर लगा दरवाजा रोक दिया था और मोमबत्ती की लौ से ढेर को आग दिखा दी थी.

न बार्रागान वहां आये और न ही कोनेखो. अगली सुबह मूसलाधार बारिश से कोयले, दीवारें, गिरी हुई छतें सब भीग गये. फिर उनसे गंध उठने लगी. और खुदा जाने कहां से आकर टीसे मिनमिनाने लगे. ■

● अनुवाद : सुरेश धींगड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधायक बिकाऊ हैं...!

मथुरादास की डायरी

■ मथुरादास

देश के प्रायः हर हिस्से में किसी न किसी मौसम में विधायकों की अगली फसल के आसार जब दूर-दूर तक नजर नहीं आते तो मौजूद स्टॉक की खरीद फरोख्त शुरू हो जाती है... चूंकि अभी तक इसके लिए कोई स्पष्ट नियम, शर्तें, मंडी वगैरा नहीं है सो कई बार झमेला उठ खड़ा होता है. इस हालत को मद्देनजर रखकर मथुरादास यहां कुछ रचनात्मक सुझाव दे रहे हैं जिससे यह काम न केवल आसान होगा बल्कि क्रेता और विक्रेता दोनों के लाभ और यश में भी वृद्धि होगी—

एम. पी. यानी संसद सदस्य तो अब बिकाऊ नहीं दिखाऊ रह गए हैं. एक जमाना बीच में आया था. उम्मीद बंधी थी मोरारजी के जाने के बाद, कि दूकान पर वे भी नजर आया करेंगे बैंगनों के साथ. मगर बाद में गड़बड़ हो गई. एम. पी. इस दूकान की बोरी से उस दूकान की बोरी में तो जरूर जाता दिखता है पर बिकाऊ नहीं है. आप उसे वहां रखा हुआ देख सकते हैं. और एम. पी. अगर अकबर अहमद डंपी का है तो न बिकाऊ होगा न दिखाऊ बल्कि डराऊ ज्यादा हो सकता है.

इधर मथुरादास पूछताछ करते रहे—विधायक की दर क्या है? उसका बाजार भाव क्या है?

इनमें मैं उन विधायकों को शामिल नहीं कर रहा हूं जो मौजूद दिल्ली में हों मगर मुख्यमंत्री और राज्यपाल उन्हें हैदराबाद में खड़ा मान रहे हों. ऐसी स्थिति में विश्वसनीयता घट जाती है, मुख्यमंत्री या राज्यपाल की नहीं विधायक की. दिल्ली में विधायक को पत्रकार साक्षात् देखता है, बैठकर पीता भी है (बहुत हल्के रंग की बिना दूध चीनी की चाय ही होगी), फोटो भी खींचता है और चलते वक्त पूछता है, "विधायकजी, आपका कुर्ता ताजा खरीदा क्यों लगता है? कहीं आप कोई और तो नहीं हैं जिसे परेड कराने के लिए नया कुर्ता दिलवाया गया हो?"

तो बंधु, ऐसे माहौल में राज्यपाल की नहीं विधायक की विश्वसनीयता घटती है.

अभी हमारे माननीय राष्ट्रपति ने नयी परंपरा न डालने की विजय दिखाते हुए भी एक नयी परंपरा डाल दी—वे विधायकों से मिले. उनसे प्रेमपूर्वक बात की, पर उन्हें गिना नहीं. यह स्वस्थ परंपरा है. अब किसी भी प्रदेश का राज्यपाल बहुमत को लेकर मिलने आने वालों का स्वागत अवश्य करेगा. उन्हें प्रेमपूर्वक चाय भी पिलाएगा. पर उन्हें गिनने से इनकार कर देगा. इसके बाद वह अपनी संतुष्टि से जिसे चाहे मुख्यमंत्री बना दे.

एक समय में ऐसी घटना राष्ट्रीय पैमाने पर हो गई थी. ढाई अदद संसद सदस्य लेकर चौधरी चरण सिंह नीलम संजीव रेड्डी से मिले. रेड्डी ने भी लोकतंत्र की रक्षा की. संसद सदस्य गिनने से इनकार कर दिया. गिनने से क्या संख्या मानने से ही. जगजीवन बाबू बहुत से एम. पी. ले गये, चौधरी साहब ढाई. वैसे आप जिद ही करें तो मैं राजनारायण को एक अदद पूरा माने लेता हूं. खैर.

रेड्डी साहब ने कहा—सूची, संख्या कुछ नहीं. उनकी संतुष्टि हो गई है. प्रधानमंत्री चौधरी बनेंगे.

यह तो विषयांतर था. सच कहूं, अब हर सही चर्चा विषयांतर ही है.

तो मथुरादास इन दिनों जानना चाहते हैं कि विधायक का रेट आजकल क्या चल रहा है!

आलू का रेट जानना आसान है. आप जाइये और सब्जीवाले से पूछ आइये. विधायकों के मामले में ऐसा नहीं है. विधायकों का सब्जी वाला कौन है? यही नहीं, विधायकों का बाजार कहां है? गुड़ मंडी होती है, भूसामंडी होती है, सब्जी मंडी होती है. विधायक मंडी किस आजादपुर में है?

इस मामले को लेकर बड़ी मगजमारी करनी पड़ी. आपात्काल में कानून बना कि जो चीज बंद डिब्बे में मिलती है उस पर कीमत लिखो. कीमत लिख दी गई पर डिब्बे ही गायब हो गये. न रहेगा डिब्बा न दिखेगा दाम.

विधायक का रेट कहां लिखा जाय?

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़ल

■ विजय किशोर मानव

नदिया, पोखर, ताल हाल के दंगे में,
सब थे गहरे लाल हाल के दंगे में.

कटे हाथ हिलते देखे लोगों ने,
फूलों टंके रुमाल हाल के दंगे में.

इंकलाब की जगह, बोलतीं अपनी जय,
लाशें लिये मशाल हाल के दंगे में.

बस्ती भर बाजार, आदमी सौदागर,
अस्मत थी हर माल हाल के दंगे में.

पिचके पेट, हुए सीने छलनी उस पर,
छपी पीठ पर नाल हाल के दंगे में.

ज्वालामुखी रहे कर्फ्यू के आंचल में,
खुशबू थी बेहाल हाल के दंगे में.

उसके शरीर के किस भाग पर? माथे पर रेट लिखा हो तो वह रेट कम, कलंक ज्यादा लगेगा जबकि किसी चीज का उचित मूल्य होना कोई कलंक तो है नहीं रेट विधायक की पीठ पर हो तो और मुश्किल है. लोग कहेंगे—पीठ पीछे यह भाव है उनका, सामने तो उन्हीं से पूछना पड़ेगा.

मान लीजिए विधायक का रेट उसकी छाती पर टांक दिया जाये. अच्छा भाई. रेट छाती पर टंक गया. लेकिन आपको नहीं मालूम कि ऐसी हालत में वे विधायक कम किसी प्राइमरी स्कूल का ब्लैक बोर्ड ज्यादा लगेंगे. वह ऐसे कि रेट की तो एक लंबी सूची देनी पड़ेगी. दर तबादला :

(क) प्रथम श्रेणी लाभ के पद
(ख) प्रथम श्रेणी सूखे पद
(ग) निचली श्रेणी ऊपरी आमदनी
(घ) निचली श्रेणी सूखी
(ङ) तबादला मास्टरी का
(च) अभियंता उच्च श्रेणी
(छ) अभियंता निचली श्रेणी

दर बहाली—
दर नियुक्ति—(श्रेणी अनुसार)
दरों में डिस्काउंट—
(क) दोस्ती के आधार पर
(ख) रिश्तेदारी के आधार पर
(ग) धौंस के आधार पर

मुफ्त जनसेवा—(कन्याओं के अभिभावक निजी तौर पर जानकारी लें)
दर फाइलों की—
(क) रुकवाने की.
(ख) चलवाने की.
(ग) गोल कराने की.
दर दल बदल : (निजी तौर पर मिलें)

यहां दल बदल की दर जानने के लिए निजी तौर पर मिलना इसलिए जरूरी होता है कि भुगतान न चेक से होता है न ड्राफ्ट से.

खैर अब आप खुद सोचिए अगर इतनी लंबी-चौड़ी इबारत किसी विधायक के सीने पर लगी हो तो लोग उसे दूर से खाज-खुजली का विज्ञापन समझेंगे. इसलिए मथुरादास इस गंभीर समस्या पर गौर करते रहे कि विधायक का रेट उसके शरीर के किस हिस्से पर लिखा जाय.

वैसे इस सारे मामले में एक पेंच है. रेट हर किसी का हर समय और हर स्थान पर एक नहीं रहता. वह बदलता भी रहता है. कभी-कभी उसमें बोली लगने की नौबत भी आ जाती है. एक बार सब्जी मंडी में दो धनवानों में ठन गई. कद्दू की जो गाड़ी वे दो सौ में खरीदते थे उसकी बोली बढ़ती गई. यहां तक कि वही गाड़ी पच्चीस हजार में बिकी. यह दूसरी बात है कि उसी शाम पच्चीस हजार देकर कद्दू खरीदने वाले ने गाड़ीवान को अकेले में पीटपाटकर पच्चीस हजार ही नहीं गाड़ी के बैल भी छीन लिए.

यों तो सामान्यतः यह सुझाव बुरा नहीं है कि विधायकों का एक सट्टा बाजार या फाटका अथवा भद्र भाषा में शेयर मार्केट खोल दिया जाए. 'खरीद्दा,' 'बेच्चा' के मनोहारी शोर में बड़े से बड़ा सौदा सहजता से निबटाया जा सकता है. इसका बड़ा स्टाक एक्सचेंज जाहिर है दिल्ली में ही बनेगा क्योंकि राजनीति का सबसे बड़ा-शायद एशिया का सबसे बड़ा राजनीतिक औद्योगिक शहर दिल्ली है. यहां राजनीति का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है और देश की मंडियों में राजनीति का माल यहीं से जाता है.

जिस तरह भारत के अन्य उद्योग सौ घरानों के कब्जे में हैं उसी तरह दिल्ली में भारत की पोलिटिकल इंडस्ट्री भी पचीस घरानों के हाथ में है. और वे घराने अकेले इंदिरा गांधी के नहीं हैं. पच्चीस में से उनका भी एक ही घराना है.

तो दिल्ली के राजनीतिक सट्टा बाजार से हमें बराबर इस तरह की सूचनाएं मिलती रहनी चाहिए— दलबदल में उछाल. तबादला नरम.

सट्टा बाजार में विधायकों की खरीद-फरोख्त ही नहीं, समय आये तो राज्यपालों तक की खरीद-फरोख्त का जुगाड़ बैठ सकता है.

बहुत से लोगों का कहना है अब राजनीति में नैतिकता नहीं रही. वे भोंदू हैं. नैतिकता के लिए रहने की जगह राजनीति ही बची है? बल्कि मैं तो एक और बात पूछना चाहूंगा. जिस नैतिकता का वास राजनीति में होगा वह नैतिकता कहाने लायक रहेगी? दूध को आप नाली में रहने के लिए कहते हैं. दूध नाली में डालेंगे तो नाली नाली ही रहेगी पर दूध का हुलिया बदल जायगा.

इसीलिए मैं यह सवाल कभी नहीं उठाता कि राजनीति में नैतिकता होनी चाहिए. राजनीति में खुद राजनीति बची रह जाये यही क्या कम गनीमत होगी? □

चलते-चलते

व्यंग्य के बारे में हम क्या कहेंगे? व्यंग्य काफी अच्छा रूप नहीं हो सकता साहित्य का, बल्कि, यह जीवन का मृण्मय, मायावी, कीचड़ में बेकार लोटने से जुड़ा-तुड़ा पक्ष है. व्यंग्य का उद्देश्य सामाजिक बुराइयों पर, व्यक्तित्वों की कीमत पर हंसाना होता है. परंतु लोग तभी हंसेंगे, जब लेखक अपने नुक्ते पर निशाना बैठाने में सफल होगा. यदि पाठक गड़बड़ा जाए, तो व्यंग्य उद्देश्यहीन है. □

('साहित्य संप्रेषण के कठघरे में'...
भीष्म साहनी के विचार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लाल पीली जमीन' तथा 'हुजूर दरबार' के बाद गोविंद मिश्र का नया उपन्यास 'तुम्हारी रोशनी में'. पिछले उपन्यासों की सख्त-सख्त जमीन की जगह दलदल, आक्रामकता की जगह कुछ मुलायम-मुलायम, चौड़े फलक की जगह गहराई और चरित्रों की भीड़ की जगह गिने-चुने पर संश्लिष्ट पात्र. परंपरा और मुक्ति के बीच झूलती भारतीय नारी को ऐसी सहानुभूति सम्भवतः कोई लेखिका भी नहीं दे सकती थी. इन सबके बीच जीवन के वास्तविक अर्थ की तलाश, कुछ सकारात्मक, कुछ सुंदर, जो संबल हो सके, पर जो आज की दिखावी संस्कृति में दबता चला जा रहा है. प्रस्तुत है शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास के चार असंबद्ध अंशों में से पहला. . .

पगडंडियां

गोविंद मिश्र

हम कहीं बाहर मिलें. . . मेरी यह मांग कब की थी. जब तब उसके सामने मैं ऐसे या वैसे दोहरा देता था. उसके साथ दफ्तरी माहौल के बाहर होने का मन था. एक दिन जब मेरा आग्रह कुछ ज्यादा ही दिखा तो वह तैयार हो गयी. कहां चलें. . . काफी देर हम यही सोचते रहे. एकाएक वह उचक पड़ी, "चलो, चिड़ियाघर चलते हैं."

दिन फैलने लगे थे. पांच-दस दिन और कि जाड़ा बहुत पीछे छूट चुका होगा. धूप में चिलचिलाहट आती जा रही थी. पशु-पक्षियों में छांह के लिए अकुलाहट साफ दिखाई देती थी. चिड़ियाघर के अंदर आते ही सुवर्णा ने धूप का चश्मा लगा लिया था, कुछ गौर से देखने के लिए उतार लेती थी.

"यहां एक छोटी रेलगाड़ी चलायी गयी थी. गाड़ी पर चिड़ियाघर का चक्कर लगाना. . . यह शौक लोगों को खूब खींचता था. भीड़ बढ़ गयी. . . लेकिन चिड़ियों की संख्या घटने लगी. रेल की आवाज से वे बिदक जाती थीं. . . आखिर रेल को बंद करना पड़ा." किस्सा सुनकर उसे थोड़ा सा ताज्जुब हुआ, "किले की दीवार यहां कितना अच्छा ब्रैक गाउंड बनाती है. . ." उसने कहा. हम चल रहे थे. . . बातें करते हुए.

"वह देखो, झरोखे से एक आदमी झांक रहा है." मैंने ऊपर किले की तरफ इशारा किया.

"कहां. . . वह. . . उधर? हटो, वह तो कपड़ा है."

"नहीं, आदमी है."

वह रुक गयी, टकटकी लगाये उसी तरफ देखती रही. थोड़ी देर में कपड़े जैसी वह चीज हिली.

"हां, आदमी ही है. . . हिलता-डुलता तो था ही नहीं, आदमी कैसे लगता."

"किले की भीतरी दीवार से सटे हुए कई कमरे बना दिये गये हैं, कई लोग रहते हैं उनमें. अच्छा. . .? वैसे यह ठीक है, इमारतों का इस्तेमाल हो जाता है. रहने की इतनी किल्लत है इस शहर में. . . चलो, इधर से चलते हैं."

हम उधर चल पड़े. सुवर्णा खूब उत्साह में थी. हर चीज को गौर करना और उस पर कोई न कोई टिप्पणी. मैं बाहर की चीजों को देखने से ज्यादा उसे देख रहा था. ताजी-ताजी

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्मी से उसका रंग सुर्ख हो गया था. धूप से बचने के लिए जब वह साड़ी का पल्लू सिर पर ले लेती तो उसके खुबसूरत नाकनक्श जैसे किसी चौखटे में सिमट आते, वह और भी खूबसूरत दिखती.

सामने आइसक्रीम का ठेला दिखाई दिया, "चलो आइसक्रीम खायेंगे. . . ऑरेंज बार."

वह कितनी आसानी से बच्ची हो जाती है; जब चाहे तभी ही या कि है ही बच्ची. ऑरेंज बार चाटते हुए हम लोग आगे बढ़ने लगे. . . मुंह लाल-लाल. मुझे तो मुद्दत हुई थी ऑरेंज बार खाये, जब कि बचपन में तो आइसक्रीम के नाम पर ऐसी ही कोई चीज जानते थे.

"आओ दौड़ लगायें." उसने दूसरा प्रस्ताव रखा.

हम दौड़ने लगे, आइसक्रीम चाटते हुए. हांफ जाते तो पैदल चलने लगते. खूब पैदल चले. जो रास्ते बहुत ही कम चले हुए दिखते, वह उसी पर चलने को कहती. ऊपर चढ़ाई दिखती तो दौड़ती हुई चढ़ती. एक कटघरे की तरफ का रास्ता ऊबड़खाबड़ था. वह उस तरफ बढ़ गयी. सामने तार का जाल तानकर चिड़ियों के लिए एक घेरा-सा खड़ा किया गया था. हल्की चढ़ाई के पार जहां उतार शुरू होता था, वहीं जाल के खूंटे गाड़े गये थे. . . नीचे गड्ढे जैसा एक छोटा मैदान जाल से तुपा हुआ.

खूंटों के पास खड़े होकर वह नीचे बिछे जाल को देखने लगी. धूप से बचने के लिए उसने सिर ढक लिया था. उसके ठीक पीछे मैं था. . . उससे करीब-करीब छूता हुआ. खूबसूरती की गंध. . .झोंके नथुनों को भिगो रहे थे. . .सब कुछ भरा-भरा-सा हो गया था.

जाल के नीचे वह छोटा मैदान खाली था, सिर्फ जहां-तहां उगी घास थी. कोने की छांह में आखिर एक मोर नजर आया. . . अकेला और उदास.

"सुंदर चिड़ियों के लिए होगा." मैंने पीछे से कहा.

"क्यों लगाते हैं जाल वे?"

"इसलिए कि भाग न जायें."

"फिर सब चिड़ियों पर जाल क्यों नहीं लगाते."

"छोटी चिड़िया तो खुल कर निकल ही जायेंगी. . .'

"क्यों, वैसा जाल भी बनाया जा सकता है. . . पर देखो चिड़ियाघर में कितनी सारी छोटी-छोटी चिड़ियां भी हैं, वे कैद नहीं हैं, मतलब दूसरे तरीकों से भी उन्हें एक जगह रखा जा सकता है"

"सुंदर चिड़ियां ज्यादा कीमती होती हैं. . . इसलिए उन्हें बचाकर रखना पड़ता है."

वह सामने देखने लगी. चिड़ियों को कैद में रखने की बात अच्छी नहीं लग रही थी उसे.

"यहीं कहीं खूब सारी रंग-बिरंगी चिड़ियां हैं. इंग्लैंड में कार्डिफ के पास मैंने एक जगह बहुत ही सुंदर बतखें देखी थीं. . . . लाल, पीली, नीली चोंचों वाली. कुछ-कुछ वैसी यहां भी हैं." मैंने कुछ उत्साह से कहा.

"हां. . . ?चलो, देखेंगे उन्हें. . ."

वह मीठी सी जिद्द करते हुए मुड़ी, मुझसे टकराते-

समाचार पत्र विज्ञापन: सन् २०८४

नयी दरें लागू

राजधानी, 26 मार्च, 2084. वर्तमान महंगाई को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने प्रदेश भर में 1 अप्रैल से रिश्वत एवं घूसखोरी की नयी दरें लागू करने का निर्णय लिया है. इस निर्णय से कर्मचारियों की आय में 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि होने का अनुमान है. इस वृद्धि का राजस्व पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा.

शिक्षा प्रणाली में सुधार

राजधानी, शनिवार. प्रदेश सरकार ने घोषणा की है कि जो छात्र अपने रातभर के व्यस्त कार्यक्रम के कारण ठीक से पढ़ाई नहीं कर पाते अथवा कक्षा में उपस्थित नहीं हो पाते, वे चाहें तो कक्षा में अपने सचिव अथवा कंप्यूटर भेज सकते हैं. शासन का स्पष्ट आदेश है कि ऐसी अवस्था में सचिव अथवा कंप्यूटर ही छात्र के स्थान पर उसके लिए परीक्षा दे सकेंगे. इस व्यवस्था से नकलबाजी के कुछ कम होने की आशा है.

छपते-छपते

हमारे सम्मानीय संवाददाता को 'संवादरत्न' की उपाधि से विभूषित करने का निर्णय लिया गया है. संवाददाता को गिरफ्तार कर राजधानी भेजने की व्यवस्था की जा रही है.

टकराते बची. रंगों की तलाश में हम फिर दूसरी तरफ चल पड़े. रास्ते में बंदरों का इलाका पड़ा. उसे बंदरों से नफरत थी, "जाने कैसे देखते हैं और बेकार की हू-हू करते रहते हैं. . ."वह कह रही थी.

"हमारे पूर्वज हैं!"

"तभी तो आदमी भी. . . चीता कितना एलीगैंट होता है."

"ऐलीगैंट कि चालाक. . . किस चालाकी से शिकार पर झपटता है."

"वह तो सिर्फ शिकार की स्टाइल है. अपने आप में वह हमेशा एलीगैंट दिखता है, तुम्हें दिखाऊंगी."

पानी पर तैरती तरह-तरह की बतखें. . . रंग बिरंगी, कोई एकदम सफेद, कोई मिले-जुले रंगवाली. कुछ पानी के किनारे अलसायी-सी पड़ी थीं. . . कुछ दरख्तों पर डैने फड़फड़ा रही थीं. अब उसे अच्छा लग रहा था, कुछ देर पहले चेहरे पर जो मलिनता आ बिछी थी, वह धुल गयी.

"कितने सारे रंग. . . सभी सुंदर. . . एक से एक. . . लेकिन सफेद के आगे सब फीके दिखते है." बतखों को देखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गीकृत विज्ञापन : शासकीय

शासकीय विद्युत मंडल

विद्युत की कमी और लिमिटेड विद्युत कंपनियों के भारी बिल से छुटकारा पाइए. नियमित एवं भरपूर विद्युत सप्लाई की गारंटी. एक बार सेवा का अवसर प्रदान करें.

—अधीक्षण मंत्री

पत्राचार समस्या

हमारी सेवाएं आपकी निश्चिंतता. नाममात्र के शुल्क में आपके पत्रों और तारों का त्वरित और सही वितरण हमारी विशेषता है. एक बार आजमा कर देखें.

—डाक तार विभाग

जनसेवा विभाग

निजी जासूसी एवं सुरक्षा कंपनियों के भारी व्यय से बचिए. अपराध अन्वेषण और रोकथाम में शासन आपकी सहायता करना चाहता है. निकटतम 'जनसेवा चौकी' की सेवाएं लीजिए. □

▣ सी. राजेंद्र सिंह

● द्वारा रीजनल वर्कशाप, धनपुरी—शहडोल (म. प्र.)

हुए मैंने कहा.

"मुझे तो ऐसा नहीं लगता... वह देखो पीला... लाल... और यह काला भी... हर रंग की अपनी कशिश है."

"ये मुझे नकली लगते हैं. सफेद बड़ा है, क्योंकि वह सबको पचा सकता है, मन में विशुद्धता का भाव जगाता है... सादगी, कुछ-कुछ वैसी सुंदरता, जैसी हममें तब दिखाई देती है, जब हम बगैर कुछ ओढ़े, बिना किसी बनावटीपन के पूरी विनम्रता के साथ अपनी असलियत में खड़े होते हैं."

मैंने बात को कुछ ज्यादा ही उलझा दिया था... कम से कम उसके चेहरे को देखकर तब ऐसा ही लगा.

"दूसरे रंगों में क्या नकली है? सब अपनी-अपनी जगह असली हैं." उसने कहा.

"सफेद सादा है."

"सादा... वह तो कोई रंग ही न हुआ. रंग के माने ही है गैर-सादा."

"लेकिन सादा के बगैर हमारा काम चलता नहीं..."

"रंग जरूरी हैं. उनके बगैर क्या होगी यह दुनिया, सोचो. मेरा तो रंगों से जी ही नहीं भरता और कुदरत... हमेशा ही आसपास कोई ऐसा रंग मिल जायेगा, जो आपने पहले कहीं नहीं देखा हो... इतने सारे रंग हैं कि पहचान के लिए एक जिंदगी नाकाफी है."

यह पहली मर्तबा नहीं था, जब वह मुझ बुद्धिमान लगी थी... लेकिन यह पहली बार महसूस हो रहा था कि बुद्धि उसकी सुंदरता का कितना बड़ा हिस्सा थी.

उधर से हम चीते की तरफ बढ़ गये.

"देखो, किस शान से चलता है. यह है एलीगैंस. काली पट्टियां इसकी खाल पर कितनी सुंदर लगती हैं." वह मुझे दिखाने लगी. उसकी बात मान गया. किसी जानवर को सिर्फ उसके एक काम... वह भी भोजन जैसे जरूरी काम से चालाक मानना ज्यादती थी.

हमारे सामने फैली पड़ी प्रकृति की दुनिया, भले ही थोड़ा सजी-संवरी... उसके बीच इस तरह उचकते-कूदते हम कब से चल रहे थे, वह थक आयी थी.

"तुम्हें काफी पैदल चलना चाहिए." अपने स्वर की आत्मीयता खुद मुझे चौंका गयी.

"तब से ही तो चल रही हूं..." लड़याए बच्चे की तरह वह मुनमुनाते हुए बोली, उसे तब गोद में उठा लेने का मन हो आया था.

एक दरख्त के नीचे सीमेंट वाली बैंच पर हम बैठ गये; उसकी असमिया सिल्क की साड़ी गंदी हो जायेगी... इसकी उसे रत्ती भर भी चिंता नहीं थी. बातें चल पड़ीं. उसने बताया, वह कभी नाचती थी. अच्छा खासा सीख लिया था, 'शो' भी कई शहरों में हुए थे. फिर नौकरी और बच्चों की वजह से छूट गया. अब फिर शुरू करेगी... तभी छोटे-छोटे मुनगे हजारों की संख्या में उसकी साड़ी पर रेंगते दिखाई दिये.

"देखो, ये भी तुम्हारे साथ के लिए मचल रहे हैं..." मैंने मजाक किया.

"तो क्या इन्हें भी ले जाऊं साथ?" वह झुंझलायी और उठकर झाड़ने लगी. मैं भी उसकी मदद करने लगा.

"चलो, ये बैठने नहीं देंगे."

इधर-उधर घास का फैलाव था. जहां-तहां पेड़ की छाया में प्यार करने वालों के जोड़े थे, अपने में खोये हुए, छोटी, पर कितनी बड़ी दुनिया.

"जीवन के खूबसूरत क्षण अपने आप नहीं आते, इन्हें चुराकर लाना पड़ता है." मैंने कहा.

"कोई जरूरी नहीं."

"अच्छा, क्या रमेश को मालूम है कि तुम मेरे साथ यहां घूम रही हो?"

"हां... मैंने बताया था उसे."

"उन्हें इतराज नहीं हुआ?"

"इसमें इतराज की क्या बात है? अपना सर्किल तो मैं ही बनाऊंगी, रमेश तो नहीं... जैसे कि उसके लिए दोस्त मैं नहीं चुन सकती. रमेश को मालूम है कि मैं तुम्हारे साथ उठती-बैठती हूं. उसे यह भी बताया था कि तुम मुझे अच्छे लगते हो."

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुमने यह कह दिया?"

"तो. . . ? क्या हुआ, गलत कहा?"

"नहीं. . . उसने क्या कहा?"

"कुछ भी नहीं. . ."

हम सड़क के रास्ते की बजाय दरख्तों के नीचे चलते हुए लौटे. हवा से झूलते पेड़. . . सरसराती पत्तियां. . . कच्ची जमीन. . . थोड़ा नम. . . पैर घंस-घंस जाते थे. एक इमारत बेल से आधा ढकी हुई थी. एक तरफ छोटे-छोटे पेड़ थे, जिन पर से होकर बेल ऊपर गयी थी. इमारत और पेड़ों के बीच एक रास्ता तंग, पर ढका हुआ और ठंडा था. वहां से गुजरते हुए हम एकाएक थक गये . . . एक दूसरे के बहुत पास. . . उसका सिर मेरे कंधे को करीब-करीब छूता हुआ, बालों की गंध उठकर नथुनों में. . .फिर उतरकर मुझे भरती हुई. भीतर कैसा स्निग्ध आलोक. . . भव्य, जैसे हर चीज के बंध खुल गये हों और उनसे रोशनियां फूट पड़ी हों. रंगबिरंगी सुगंधित बौछार की चुभन जैसे मुझे किसी अलौकिक मादकता में झुला रही थी कि हम फिर चल पड़े.

मात्र एक हल्की-सी छुअन, पर कितनी दूर जाती हुई. एक पल. . . पर कितना बड़ा. उस छोटे से क्षण मेरे भीतर जैसे कोई अनंत शक्ति उड़ेलकर चला गया. . . जैसे अब मैं मजबूत था. . . चलते रहने के लिए, रास्ते में कुछ भी सहने के लिए. . . जीवन सुंदर था, तमाम तकलीफों के बावजूद.

जीवन-यात्रा क्या सिर्फ एक सड़क पर आगे चलते चले जाना है, सुबह-दोपहर-शाम करते हुए या कि यहां पगडंडियां भी हैं. . .ऊंचाइयां गहराइयां भी अगर हैं तो महत्वपूर्ण क्या है? अगर महत्वपूर्ण ऊंचाइयां-गहराइयां हैं तो फिर हम क्यों जाने-अनजाने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा उन चीजों से भर रखते हैं, जो सिर्फ हमें लुढ़काती हैं, सड़क पर. . .सुबह से दोपहर की ओर, दोपहर से. . .

जीवन केवल वह है जो दीखता है या कि उसके पार भी सरहदें हैं. . .वे क्या सिर्फ इसीलिए नहीं हैं कि अदृश्य हैं, अनुभूति के अतिरिक्त उनका कोई प्रमाण नहीं? अंतरंगता के एक उस क्षण में मुझे इन सरहदों की झलक दिखाई दे गयी. मैं इन्हें छूना चाहता हूं. . .पर शायद सड़क पर ही आगे-आगे बढ़ते हुए यह संभव न हो सके. ये वे सरहदें हैं, जिन तक चलकर नहीं पहुंचा जा सकता, पर उन तक उठा जा सकता है. लोग कहते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण मेरा व्यक्ति है, लेकिन किसी का सान्निध्य जो मेरे व्यक्ति को इतना फैलाव दे जाता है कि मैं पार देखने लगूं. . .यह क्या है? और अगर पार की उन सरहदों तक अंतरंगता में ही उठना है तो मैं कह सकता हूं कि मुझे इसे किसी की अंगुली पकड़कर चलना होगा.

कौन सरहदें हैं ये. . .इनकी पहचान क्या है? जैसे धुंध में ढकी हिमालय-श्रेणी की एक चोटी इधर झलक जाती है, दूसरी कोई उधर. ये सरहदें हर व्यक्ति के अपने लिए उगती होंगी (अगर उगीं तो), वह भी विशेष क्षणों में, फिर दब जाती हैं. ये कैसे उगती हैं. . .

जब से उससे मिला हूं, ज्यादा महसूसने-सोचने लगा हूं.

कितनी तरह के सवाल उठते हैं मन में, एक-से एक सुंदर बातें खिलती हैं. . .जैसे किसी ने आकर मुझे खोल दिया है, उत्साह ही उत्साह! मुझे लगता है कि मैं अपने बाहर से उखड़ा-उखड़ा नहीं, जुड़ा हूं, बल्कि बाहर की हर चीज मुझे पूर्णता देने को है. . .सबका अभिन्न हिस्सा हूं मैं. एक व्यक्ति में डूबने लगो तो तुम्हारा संसार सीमित हो जाना चाहिए, पर मेरा संसार तो बढ़ रहा है. हर चीज, हर व्यक्ति से जुड़ना चाहता हूं.

एक दिन मुझे लगा कि अगर यह समझना हो कि जीवन का मर्म क्या है तो बच्चों को देखो. . .कैसे जिंदगी की रोशनी फूटी चली जाती है उनकी आंखों में. हर चीज जानने को उत्सुक हर चीज लेने को आतुर. प्यार से कैसे फौरन बंधते और खुलते हुए. . .दुगना प्यार देते हुए. चालाकियां...छोटी-छोटी मासूम... खुर्राटी दूर-दूर तक नहीं! कैसे जिंदगी से सटकर जीते हैं वे. . .उससे गरमाहट लेते हुए, उसमें गरमाहट पैदा करते हुए.

क्या मैं पैदा हो रहा हूं? 3 मार्च, 1977

—अगले अंक में दूसरा अंश—पानबहार—

लघुकथा

मुद्दा

▣ ज्वालाप्रसाद शर्मा 'शांडिल्य'

वह नगर निगम के चुनावों के लिए एक पार्टी द्वारा घोषित उम्मीदवारों की सूची पढ़ रहे थे. उनकी निगाह एक नाम पर आ अटक गयी, "यह वही आदमी है, जिस पर आये दिन चोरी, डकैती, हत्याकांड, बलात्कार, वेश्यावृत्ति आदि के लिए शक किया जाता रहता है?" उन्होंने पास बैठे व्यक्ति से पूछा.

"हां?"

'ऐसे बदनाम व्यक्ति को खड़ा किया है इस पार्टी ने."

"हां, चुनाव जो जीतना है. विरोध में इसके मुकाबले का कोई महारथी है नहीं. छोटा-मोटा इसके भय के मारे वैसे ही इसके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता. निर्विरोध चुन लिया जायेगा."

"यह तो बड़े अनर्थ की बात है. पहले तो जन प्रतिनिधि के लिए प्रतिष्ठित, योग्य, सच्चरित्र, ईमानदार, भलेमानस को खड़ा किया जाता था."

"वह जमाना लद गया. अब तो मुख्य मुद्दा चुनाव जीतने का रह गया है." □

● नेहरू कुटीर, रामगंज मंडी, कोटा (राजस्थान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

कर्फ्यू

राकेश वत्स

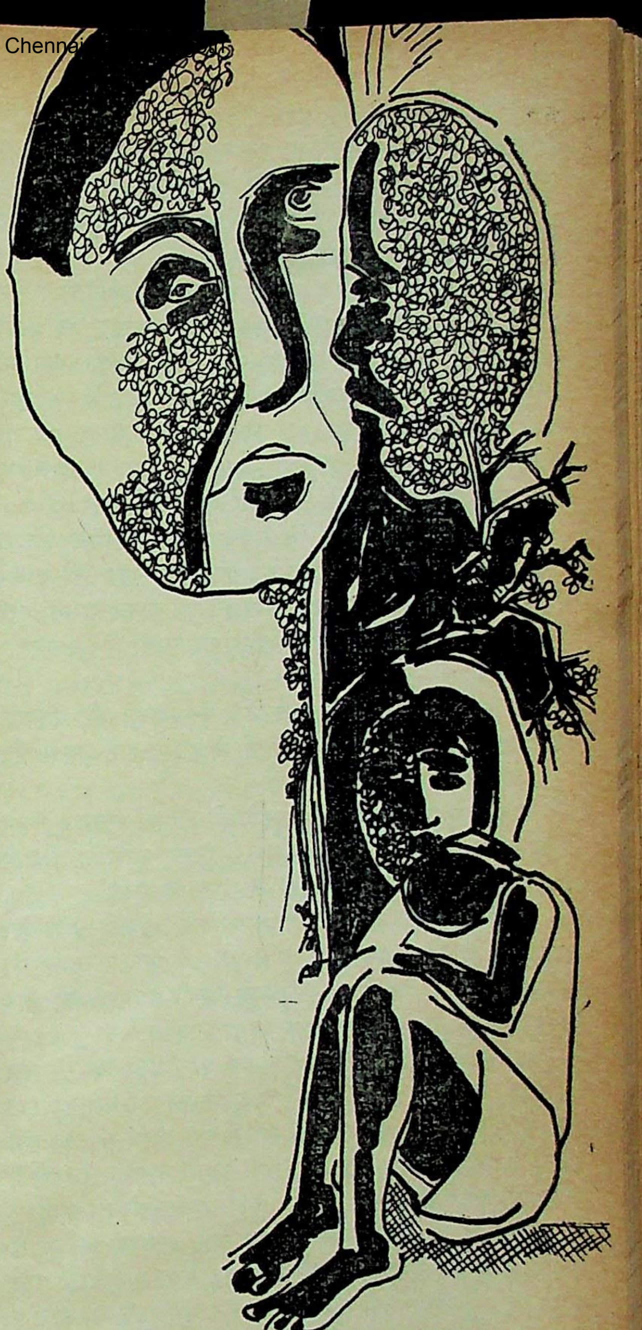

पूरे सात दिन बाद एक और गाड़ी लाहौर से अमृतसर पहुंची है. कत्थई रंग में धुली-पुती और भुतही खंडहर की तरह दिल दहला देनेवाली गाड़ी.

छह-सात साल का एक घायल बच्चा अधजले फट्टों के नीचे दबा जिंदा बचा मिल गया है. भीड़ उसे घेरकर तरह-तरह के सवाल कर रही है. बच्चा घबराया हुआ है. जूड़े के बाल भी थोड़े जले हुए हैं. फिर भी वह तुतलाई-सी जुबान में कुछ बोल रहा है. बहुत-से नरमदिल लोग उसकी बोली सुनकर फूट-फूट कर रोने लगे हैं. समाजसेवी दल के दो जवान आवाजें लगा-लगाकर बच्चे के किसी सगे-संबंधी को ढूंढने की कोशिश में लगे हैं.

इधर एक कमजोर दिल बुढ़िया गश खाकर फर्श पर गिर पड़ी है. बुढ़िया का जवान लड़का डिब्बे से उतारी जा रही लोथों की तरफ टकटकी लगाये परल-परल आंसू बहाये जा रहा है. लड़के की नयी ब्याही बहू अखबार से हवा करके सास को होश में लाने की कोशिश कर रही है, "उट्ठो मांजी उठो! ए वेखो सारे आ गए ने जी! ए छोटा तुहाडी बुक्कल विच आन लई रिहाड़ कर रिहा ए!" मांजी नहीं उठतीं तो वह भी पल्लू में मुंह छुपाकर सुबकने लगती है. पास ही कोई किसी को बता रहा है, "ऐस प्रभोजोत कौर दे बड़े मुंडे ते छोटी कुड़ी दे दो परवार आ रहे सी ऐस गड्डी विच्च. इक्क नी बचया!"

ये हिंदोस्तान के विभाजन के समय के कुछ टुकड़े हैं जो आपस में गड्डमड्ड होकर पिकासो की किसी डरावनी पेंटिंग की तरह सहसा उसके दिमाग की दीवार पर आ टंगे हैं. उसे हैरानी होती है कि बचपन उसके दिमाग में तीन दिन पहले घटी घटनाओं की तरह ही ताजा है. साथ ही उसे लगता है कि भीड़ से बुथे बंद डिब्बे की तरह उसके बंद कमरे में शायद आक्सीजन की कमी हो गयी है. जो भी हो, उसे बाहर की ताजा हवा को कमरे के अंदर लाने का बंदोबस्त करना ही चाहिए.

कुछ पल वह हथेलियों पर आंखें गड़ाकर सांस बंद करके जेहन की जलन की असलियत को पहचानने की कोशिश करता रहा. कामयाबी नहीं मिली तो घुटनों पर हाथ रखकर खड़ा हो गया और कानों पर ध्यान केंद्रित कर बाहर का जायजा लेने की कोशिश करने लगा.

आश्वस्त होकर उसने गर्दन घुमाकर कुत्ते की तरफ देखा जो अपने नन्हें-नन्हें पंजों पर छोटा-सा मुंह रखे सिर्फ पुतलियों को हिला-डुलाकर उसकी ताकतों को जांच कर रहा था. शायद कुत्ते को भी यकीन हो गया था कि बाहर निकलना अभी कतई संभव नहीं है. जब सदा खुला रहनेवाला इस घर का दरवाजा पिछले तीन दिन से नहीं खुला तो अब आसानी से खुलनेवाला नहीं है. नहीं तो किसी के बाहर जाने की भनक पड़ते ही ऐसी उछल-कूद मचाने लगता था कि जाने-वाला उसे चकमा देकर ही बाहर निकल पाता था.

कुत्ते की इस तरह की संन्यासी मुद्रा पर उसके होंठ

▣ पंजाब के आतंक भरे वातावरण को रेखांकित करती एक कहानी

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैल गये. उसने धीरे-से पूछा, "कहो पिंटू साहब क्या हाल-चाल हैं! तंग आ गये हो ना इस जेलखाने से! अभी तुम्हारे लिए ताजा हवा का बंदोबस्त करते हैं!"

कुत्ते ने मुंह नहीं उठाया. बस तनिक-सी बड़े-बड़े बालों-वाली चांवरी दुम हिला दी.

वह दबे पांव बाहर की तरफ खुलनेवाली खिड़की के पास पहुंचा. छल्लों से होनेवाली आवाज से बचाकर पर्दे हटाये और शीशों पर नाक रखकर बाहर का दृश्य देखने की कोशिश करने लगा. पर शीशे अंधे थे, इस वजह से उसे सांझ की रोशनी के सिवा कुछ भी दिखायी नहीं दिया. पर यह रोशनी भी उसे बहुत भली लगी. बाहर की हवा को आमंत्रित करने का उत्साह जगाने के लिए पर्याप्त भली.

उसने बिना आवाज किये चिटखनी को नीचे उतारा और एक पल्ले को थोड़ा-सा खोलकर हवा के सामने लंबी-लंबी सांसें खींचने लगा. आश्वस्त होकर उसने जूड़ा खोल लिया और बाल कंधों पर फैलाकर मस्ती में डूब गया.

उसे तसल्ली से ठंडी हवा लेते देख कुत्ता भी अंगड़ाई खड़ा हो गया और इर्द-गिर्द चंचल होकर उसके पैर लेकर चाटने लगा.

"क्यों पता चल गया!" कुत्ते की चीं-चीं सुनकर उसने आंखें खोल दीं, "आ, इधर से आ!" उसने कुत्ते को गोद में उठाया और उसका मुंह झिरी के पास ले गया.

कुत्ते ने पहले तो आंखें झपकाकर आजाद हवा का आनंद लिया फिर थूथनी पल्ले के पास ले जाकर सूंघने की वर्जिश करने लगा. पूरी तसल्ली नहीं मिली तो पल्ले को और ज्यादा खुलवाने के लिए मचलने भी लगा.

उसने कुत्ते को संभालकर टेबल पर बिठा दिया. पल्ले को पूरा खोलने के लिए पर्दे की अड़चन को दूर कर ही रहा था कि फौजी बूटों की एड़ियां सड़क पर बजने की आवाजें उसके कानों के साथ आ टकरायीं. उसने झट-से चिटखनी लगाकर पर्दा आगे कर दिया. कुत्ता दबी-दबी-सी आवाज में जबड़ों में ही गुर्राने लगा. जब तक आवाजें मकान के सामने से होकर दूर नहीं चली गयीं वह सांस साधे खड़ा रहा और कुत्ते को भी उंगली मुंह पर रखकर चुप रहने की ताकीद करता रहा. पर कुत्ते का शरीर फिर भी ऐंठता रहा जैसे अपने गुस्से को वह बड़ी मुश्किल से पी रहा हो.

मुसीबत टलते ही वह फिर सोफे पर आ पसरा. कुत्ता भी उसके सामने थोड़ा हटकर एच. एम. वी. की मुद्रा में बैठ गया. उसका दिल हुआ कि वह कुत्ते से पूछे कि तेरा धर्म और तेरी जात क्या है? कश्मीर के मुसलमान परिवार में पैदा हुआ, वहां से पठानकोट के ब्राह्मणों के परिवार में लाया गया और अब सिखों के परिवार में पल रहा है. लेकिन उसने मन में आया सवाल पूछा नहीं, क्योंकि जवाब उसके पास पहले ही मौजूद था. इसी जवाब के वशीभूत होकर ही तो उसने कृष्णा से शादी की थी. आचानक उसकी आंखों में कुत्ते के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी. उसे कुत्ते के भूखे होने का खयाल हो आया. . .

"क्यों भूख लगी है? कैसे नहीं लगेगी! पूरे तीन दिन से नमकीन और पानी के सहारे काट रहे हैं. पता नहीं क्या हो रहा है कि एक घंटे की भी ढील नहीं मिली इन बहत्तर घंटों में. और अब तो पानी भी खतम होने को आ रहा है. पानी गुल, बत्ती गुल, बाहर निकलना तक गुल, और अभी जाने कितने दिन और ऐसे हों. . .

उसने तीन दिन पहले के अखबार की सुर्खी पर निगाह डाली. हालांकि इन दिनों में अखबार इतनी बार पढ़ डाला था कि उसकी एक-एक सुर्खी जबानी याद हो गयी थी. फिर भी तनाव का नजला बार-बार उसी पर जा गिरता था. बड़ी सुर्खी थी— 'बिजली का बड़ा ट्रांसफार्मर जलकर भस्म' उसने एक बार फिर मन को समझाया कि जब बिजली ही नहीं होगी तो पानी कहां से होगा! मंदिर के कुंए तक जाना शायद इतना आसान नहीं. रास्ते में जगह-जगह पुलिस बैठी होगी और फिर इन दिनों तो . . .!

वह झुंझलाकर खड़ा हो गया और किचन की तरफ बढ़ गया. शीशे के मर्तबान में बचा मट्ठियों का चूर एक प्लेट में बाहर निकाला, आधा कुत्ते के बर्तन में डालकर दिया और आधा खुद फांक पानी का इंतजाम करने लगा.

पर कुत्ता खाने के लिए नहीं उठा, उलटे सामने से उठकर सोफे के नीचे दीवार के साथ सटकर जा बैठा.

उसने कुत्ते को प्यार से समझाया, "खा लो बेटा राजा खा लो, ये नखरे दिखाने के दिन नहीं हैं! बाहर गोलियां चल रही हैं, बम फट रहे हैं और तुम्हें नखरे सूझ रहे हैं!" इसके आगे उसकी आवाज भर्रा उठी, "पता नहीं कृष्णा और बबली को यह भी नसीब हो रहा होगा या नहीं!... पता नहीं किस मकान या दूकान में जकड़ी बैठी होंगी! पता नहीं होंगी भी या इस मायावी अंधड़ में कहीं!..."

कुत्ता सचमुच में सोफे के नीचे से बाहर निकल आया और उसके आसपास उतावलेपन में चक्कर लगाने लगा. वह अपनी जिद इतनी जल्दी छोड़ देगा उसका विश्वास नहीं था. ऐसा बहुत कम देखने को मिला था. उसने कुत्ते को उठाकर गोद में चित लिटा लिया औल उसे इस तरह समझाने लगा जैसे बबली को दुनियादारी की अच्छी-अच्छी बातें समझाता था.

"देखो, दिन बहुत बुरे चल रहे हैं. आदमी के अंदर के शैतान ने फिर करवट बदली है. जब यह शैतान करवट लेता है तब इनसान, इनसान के खून का प्यासा हो जाता है. सींग निकल आते हैं सबके सिरों पर और पीठों पर दुमें लटकने लगती हैं. ऐसी हालत में बचकर रहना ही अच्छा है. दौड़ते हुए जंगली भैंसों के रेवड़ के आगे आना समझदारी नहीं होती. और फिर कौन-सा मेरे और तुम्हारे जैसों को कुछ हासिल होना है. पानी तो यहीं बहेगा इन्हीं पुलों के नीचे. करोड़ीमल नहीं तो लक्खी सिंह. इसलिए भौंकना-वौंकना बिल्कुल बंद. समझे! क्या समझे?"

कुत्ता समर्पण के भाव से अगले पंजे मोड़कर सब कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फर्क

▣ देवेंद्र नारायण शर्मा 'इंद्रेश'

बाबूजी रोटी. . . बाबूजी रोटी. . . दरवाजे पर होनेवाली इस आवाज से उसका ध्यान टूटा. न चाहते हुए उसने दरवाजा खोला. द्वार पर खड़े भिखारी को देखकर एक क्षण को उसका माथा ठनका. वह कुछ कहना ही चाहता था कि भिखारी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "बाबूजी, भूखा हूं रोटी दे दो." वह एकटक उस भिखारी को देखता रहा. भिखारी कुत्तों के बीच घिरा हुआ था. कुत्ते उस पर लगातार भौंक रहे थे. उसने भिखारी को रोटी दी. रोटी देकर जैसे ही उसने द्वार बंद करने चाहे तभी एक भद्र पुरुष अपने साथियों के साथ आ गये और मुस्कराते हुए बोले, "शर्माजी, इस बार मैं चुनाव में खड़ा हो रहा हूं. मैं आपसे वोट मांगने आया हूं." उसने उन्हें आश्वासन दिया. वे अपने संगी-साथियों के साथ चले गये. भिखारी वहीं खड़ा था. वह बोला, "बाबूजी हम और वे एक ही जाति के हैं. मैं रोटी मांगता हूं, वे वोट मांगते हैं. मेरे पीछे भी कुत्ते चल रहे हैं और उनके पीछे भी. . . फर्क बस इतना है कि ये कुत्ते मुझ पर भौंक रहे हैं और वे पूंछ हिला रहे हैं. ❑

● क-36, सेक्टर नं. 45, हिरण मगरी, उदयपुर (राज.)

चुपचाप सुनता रहा. फिर उसने करवट बदलकर आंखें बंद कर लीं और उसके पेट के साथ सटकर ऊंघने लगा.

"नहीं-नहीं, सोने का वक्त बिलकुल नहीं मेरे बेटे, इंतजार करने का है. हो सकता है पब्लिक रिलेशनवालों की गाड़ी ढील देने के बारे में अनाउंस करती हुई अभी आ धमके और उसके थोड़ी ही देर बाद कृष्णा और बबली दरवाजे खटखटाने लगें. हमें फौरन दरवाजे खोलने होंगे. झट-से. कहीं फिर-से हो-हल्ला हो जाने से पहले. चलो, उतरो नीचे और दरवाजे के पास जाकर बैठो!" उसने कुत्ते को नीचे उतार दिया और वह कान गर्दन के साथ सटाने की भोली कोशिश करता हुआ फिर सोफे के नीचे जा बैठा.

उसे लगा कि तीन दिन पहले की समय की गाड़ी अब तक जैसे एक इंच भी इधर से उधर नहीं हुई है. कृष्णा और बबली का बबली के जन्मदिन के लिए चीजें खरीदने बड़े बाजार जाना, उसका स्वयं का अंडे खरीदने के लिए पहले चौक तक पहुंचना, तभी खबर आग की तरह फैल जाना कि रामनौमी के जलूस में गोली चल गयी है और बम भी फटे हैं. देखते ही देखते बाजार बंद, मोहल्ले बंद और लोगों का जहां कहीं भी जगह मिले जान बचाकर दुबकना. फिर पब्लिक रिलेशन डिपार्टमेंट की गाड़ी पर लगे लाउडस्पीकर की चिंघाड़ती आवाज—'सरकार का अगला हुक्म होने से पहले रियाया का घरों से निकलना बिलकुल बंद. खिलाफवर्जी करनेवाले को देखते ही गोली से उड़ा देने का सख्त आदेश!'

"हूं गोली! गोली ना हो गयी जैसे थप्पड़ हो गया कि जो चाहे जिसके मार दो!" वह मुट्ठियां भींचकर खड़ा हो गया जैसे अभी दरवाजा खोलेगा और बाहर निकल जायेगा और जहां भी होंगी, मां-बेटी को ढूंढ निकालेगा.

"लेकिन कहां होंगी?. . . पिंटू राजा, तुम ही बताओ कि कृष्णा और बबली कहां होंगी? हो सकता है बबली के नाना-नानी के पास हों. चीजें खरीदनेवाले बाजार में ही तो पड़ता है उनका चौबारा! क्यों ठीक है ना?"

बबली का नाम सुनकर कुत्ता भी उत्तेजित हो उठा. कभी उसकी तो कभी बंद दरवाजे की तरफ देखता हुआ बाहर की भनक लेने की कोशिश करने लगा जैसे कहा गया हो कि देखो बाहर बबली आ गयी.

बबली को वह एक पल के लिए भी नहीं छोड़ता था, उसे पता है. स्कूल चली जाती थी तो उदास हो जाता था. खिड़की के पास बैठा उसकी बाट जोहता रहता था. दूर से आती दिखायी देती थी तो उछल-उछलकर कृष्णा की नाक में दम कर देता था. दरवाजा खुलता था तो गोली की तरह छूटकर बबली के पास पहुंच जाता था और सड़क पर ही लाड़ लड़ाने लगता था. जिस दिन छुट्टी ली होती थी तो यह दृश्य वह खुद अपनी आंखों से देखता था. घर में एक नया मेहमान भी जल्द ही आनेवाला था, इसलिए कृष्णा उससे ज्यादा छेड़छाड़ नहीं कर पाती थी. कृष्णा की कमी वह उसी से पूरी करता था.

सहसा उसे खयाल आया कि कृष्णा तो ज्यादा भाग-भूग भी नहीं सकी होगी. अगर वह जलूसवाले बाजार में रही होगी जैसी कि मंदिरों और गुरुद्वारों में जाने की उसकी आदत है तो फिर क्या हुआ होगा?. . .

वह पेट पर दोनों हाथ बांधकर कमरे में ही चक्कर काटने लगा. . . किसी को क्या पता है कि वह मेरी बीवी है—खानदानी सिक्ख महिंदर सिंह की बीवी! पर पल भर बाद ही उसकी अक्ल ने उसे धिक्कारा कि कैसी गंदी बातें सोच रहे हो तुम. इन हालात में तो उसे चारों तरफ से खतरा है. सिक्खों की तरफ से हिंदुओं की लड़की होने का खतरा और हिंदुओं की तरफ से सिक्खों की बहू होने का खतरा. हालात की भयंकरता को समझते ही उसके दोनों हाथ जुड़ गये—"हे वाहेगुरू सच्चेपाशा, तू ही उस का रखवाला है!" वह दीवार की तरफ मुंह करके खड़ा हो गया जिस पर गुरू नानक देव और भगवान श्री कृष्ण के चित्र एक साथ लगे थे और एक गहरी बुदबुदाहट के साथ प्रार्थना करने लगा.

शीशों की रोशनी धीरे-धीरे मद्धम पड़ने लगी. कमरे के अंदर की चीजें भी धुंधलानी शुरू हो गयीं. फिर कमरे में स्याह अंधेरा उतर आया. रोमांटिक भाषा में कहा जाये तो कमरे की छाती में अंधेरे का काला चाकू गड़ गया. शीशे बाहर के बड़े आकार के किसी दानव की चमकती चौकोर आंखों की तरह दिखायी पड़ने लगे.

अंधेरे के साथ ही डर ने भी अपने चमगादड़ी डैने फैलाने शुरू कर दिये तो उसने कुत्ते को प्यार से पकड़कर अपने पास लिटा लिया और एक से दो होने के एहसास में सोफे पर

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठकर अधलेटा हो गया. वह बहुत ही हल्के-हल्के कुत्ते के बालों को सहलाने लगा और कुत्ता अपनी स्निग्ध सांसों से उसकी बगल को. थोड़ी देर बाद ही दोनों की पलकें बंद हो गयीं.

इस बीच पुलिस जीप और गश्ती दस्ते के बूटों की आवाजें कई बार पास आयी और दूर गयी. कहीं से गोलियां चलने और किसी के रोने की आवाजें भी सुनायी देती रहीं. उसे लगता रहा जैसे सब कुछ सपने में हो रहा है. फिर सहसा पास ही कहीं उसे लाउडस्कीकर की आवाज सुनायी दी—"सरकार ने चौवी घंटे लई कर्फ्यू दी मियाद होर वधा दित्ती है! लोगां नू इत्तला दित्ती जांदी है कि सारे अपनो-अपने घरां विच्च ही रहन. पुलस नू हुकम दित्ता गया है कि समाज विरोधी शरारती तत्वां नू वेखदे ही गोली मार दवे."

अनाउंसमेंट का मतलब समझते ही उसके जबड़े सख्त हो गये. शरीर में ऐंठन आ गयी. हाथों के पगला उठने का तब पता चला जब कुत्ता चीख मारकर उठ बैठा और नीचे कूदकर कहीं छुपने की जगह तलाश करने लगा.

उसे हैरानी हुई कि उसने कुत्ते की गर्दन दबाने की कोशिश क्यों की?. . . इस बेजुबान ने उसका क्या बिगाड़ा है?. . . पर तुरंत ही उसकी समझ में आ गया कि अभाव और बंदिशों की वजह से जागा हुआ शैतान सबसे पहले अपनों पर ही प्रहार करता है.

उसने माथे पर उभर आये पसीने को पोंछा. बचे पानी में से एक घूंट पानी पीया और फिर संभल-संभलकर पैर रखता हुआ बैडरूम में पहुंच गया. घुप्प-अंधेरे में पलंग पर रखे ट्रांजिस्टर को टटोला और उसे ऑन करके गोद में रखकर बैठ गया.

किसी स्टेशन पर शायद सोल्युत-सात की उड़ान में भारत की हिस्सेदारी की गरिमा और उपलब्धि को दोहराया जा रहा था. प्रधान मंत्री के इस सवाल पर कि अंतरिक्ष से हिंदोस्तान आपको कैसा लग रहा है, अंतरिक्ष यात्री का जवाब था—"सारे जहां से अच्छा!" इसके साथ ही पता नहीं किन-किन लोगों के हाथ की तालियों से जमीन और आसमान एक हो रहा था.

उसके होंठ बिचक गये और उसने ट्रांजिस्टर बंद करके सिरहाने के पास रख दिया. फिर वह कार्निस पर पड़ी धूपबत्ती के पास माचिस की खोज करने लगा. उंगलियों के पोर छूते ही दवा की शीशी उलट गयी, ठंडेपन से लगा कि बिस्तर का सत्यानाश ही गया है. पर माचिस मिल गयी. उसने बिस्तर का खयाल छोड़ तीली जलाकर घड़ी देखी. सात बजने में तीन मिनट शेष थे. समाचार सात दस पर आने थे. वह ट्रांजिस्टर फिर से ऑन करके भाषा के सहारे जालंधर स्टेशन को पहचानकर समाचारों की प्रतीक्षा करने लगा.

पांच मिनट के लिए अखबारों की राय का प्रोग्राम चलना था. फिर आजकल के हालात पर तप्सरा, बीच में एकाध फिल्मी गीत. वह इन सबकी तरफ से ध्यान हटाकर आनेवाले बच्चे के बारे में सोचने लगा. पहली लड़की ही बड़ी देर बाद आयी थी और उससे भी ज्यादा देर बाद यह नया बच्चा. अचानक उसे खयाल आया कि उसके नाम के पीछे सिंह होगा कि शर्मा? 'श' और 'स' तो एक जैसे ही हैं. सिर्फ 'ह' और 'म' का फर्क है. वह इस फर्क को मिटाने के किसी गुर की तलाश करने लगा.

इस तलाश में सहसा उसे याद हो आयी अपनी और कृष्णा की पहली मुलाकात. फिर मुलाकात के शादी में तबदील हो जाने का लंबा इतिहास. दादाजी ने तो जल मरने की ही धमकी दे डाली थी. आखिर जीत किसकी हुई! . . . प्यार और इनसानियत की, उसका दिल हुआ कि वह लैंप जला ले और उसकी रोशनी में शादी के समय खींचे गये चित्रों की एलबम देखें. ज्यादा क्या होगा? पुलिस के सिपाही रोशनी जलती देख बीती रात की तरह दरवाजा खटखटायेंगे और खुलते ही बड़ी बेतकल्लुफी से पहले पीने का पानी और फिर कुछ खाने के लिए मांगेंगे. कह दिया जायेगा कि रसोई में जाकर देख लो . . . और जो कुछ भी दिखायी दे ले जाओ! लेकिन अगर पुलिस के पहरावे में कोई चोर-उचक्के या डाकू निकल आये तो? . . . .

इससे आगे बढ़ने की हिम्मत उसमें नहीं थी. वह लंबी सांस खींचकर खड़ा हो गया और पलंग के साथ खाली पड़ी थोड़ी-सी जगह पर ही दीवार के साथ-साथ चहलकदमी करने लगा.

पहले ही चक्कर में कुत्ते की चीख ने उसे चौंका दिया, "ओहो! तू कहां मरा पड़ा है!" उसने आवाज के अंदाजे से चीखते कुत्ते को गोद में उठा लिया और अंग-अंग टटोलकर पता लगाने लगा कि उसका पैर कहां पड़ा है. इसी बीच सुनायी दिया—'ए आकाशवाणी जलंधर है. हुन तुसीं प्रदेशक समाचार सुनो.'

नौकर

■ मातादीन खरवार

मालकिन को नौकर ने समझाया, "माई! मेरे से तुम्हारा काम होनेवाला नहीं. मेरे को छुट्टी दो."

"क्यों? क्या हुआ?" मालकिन घबरा गयी. बड़े भाग्य से ऐसा सीधा-सस्ता नौकर मिलता है. घर का सारा काम करनेवाला. खाना बनाने से लेकर बुहारी, गटका-फटका, बरतन तक करता है. बिस्तर लगाता है. बाजार करता है. दूध लाता है. कोई काम इंकार नहीं करता. हमेशा हाथ जोड़े खड़ा रहता है. बच्चे भी बहू के साथ, गर्मी की छुट्टियां बिताकर आनेवाले हैं. ऐसे में नौकर चला गया तो कितनी परेशानी होगी. आजकल इतने अच्छे नौकर मिलते कहां हैं?

"माई, तुम्हारे बरतन में कलई नहीं है. खाना अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बनता और मांजना भी बहुत पड़ता है." नौकर ने अपनी परेशानी बतायी.

"मुआ, इतनी-सी बात के लिए जाने को कहता है. कलई तो अच्छी बात है. जो-जो बरतन चाहिए, कल सुबह ले जाकर करवाले. ये ले सौ का नोट, जितना लगे लगाना, बाकी छुट्टा लाना. मैं सुबह को मंदिर चली जाऊंगी. तब तक तू कलई करवा कर आ जाना."

"पर माई, इतने बरतन कैसे ले जाऊंगा? कलईवाला दूर रहता है."

"मुआ, बोरी में भरकर टैक्सी कर लेना."

दूसरे रोज माई मंदिर से आयी तो नौकर कलई करवाकर वापस नहीं लौटा था. शाम आयी, रात हुई. नौकर का पता नहीं. माई सिर पकड़कर बैठ गयी, "हाय राम, मैं तो लुट गयी, फुटपाथ का नौकर लाकर. उसका अता-पता भी पूछना भूल गयी. बरतनों के अलावा घर की कीमती चीजें, आभूषण और पैसे भी गायब हैं." □

● खरवार हाउस, केशोर मटन शॉप के पास, अहमदाबाद रोड, अंधेरी, बंबई-93

उसने मंद-मंद कुरलाते कुत्ते को झट-से पलंग पर छोड़ा और ट्रांजिस्टर को गोद में रखकर समाचार सुनने लगा...

'इस साल प्रदेश विच्च कनकते चौलां दा रिकार्ड उत्पादन. शहरां दियां हरिजन बस्तियां लई सपैशल बिजली. सैनिक खादां बारे जल्द ही आत्मनिर्भरता दी आस. अमृतसर दे बांसां बाजार विच्च लग्गी अग्ग नाल भारी जानी ते माली नुकसान. हुन तुसीं पूरीयां खबरां सुनो. . .'

समाचार सुनने के बाद उसने ट्रांजिस्टर बंद कर दिया. उसे लगा कि उसके दिमाग के साथ बांसां बाजार और आग शब्द कनखजूरे की तरह चिपटकर रह गये हैं. इसी बाजार में तो कृष्णा के मायके हैं. भरे बाजार में दूकान है और दूकान की पहली मंजिल पर घर. वह दर्द करती कमर को झटका देकर उठा और बड़े कमरे में आकर पहले से भी कहीं ज्यादा तेज चाल में चक्कर लगाने लगा. कभी-कभी वह चक्कर तोड़कर बाहर के दरवाजे तक जाता और फिर चक्कर में लौट आता. कुत्ता एक किनारे बैठा उसको समझने की कोशिश कर रहा था.

आखिर उसने लैंप जला ही लिया और उसकी मद्धम रोशनी में उस रास्ते की तलाश करने लगा जिस पर चलकर सहज ही बांसोंवाले बाजार पहुंचा जा सके.

रास्ता मिला उसे बंद अलमारी के अंदर संभालकर रखी बंद बोतल में. आने-जानेवालों के लिए रखना जरूरी होता है. कौमों का अपना-अपना रिवाज होता है. इसके बिना बड़ी से बड़ी खातिर-तवज्जो सब बेकार. खुदा ने जो भी चीज बनायी है इनसान के लिए बनायी है. जो बनायी है तो उसको इस्तेमाल करने में क्या बुराई और क्या अच्छाई! इस वक्त शराब के पक्ष में बड़ा से बड़ा तर्क उसके सामने अपने-आप उपस्थित हो गया. समझ में आ गया कि कई असाध्य रोगों के लिए जहर भी औषध का काम करती है.

सील तोड़कर उसने शराब गिलास में उंडेली. जितने से काम चल सकता था उसमें पानी मिलाया. सबसे बड़ी उंगली भिगोकर इधर-उधर छटकारी और कानों को हाथ लगाये. फिर गिलास मुंह को लगाकर कड़वी दवाई की तरह गट-गट पी गया. विकृत हुआ मुंह बाजू के कपड़े से पोंछा. दूसरा लार्ज पैग बनाकर टेबल पर रखा और फिर पीठ कुर्सी की पीठ के साथ सटाकर गम गलत होने की प्रतीक्षा करने लगा.

उसका ध्यान गया कि कुत्ता बिना पलक झपके उसे देखे जा रहा है. उसके होठों पर गहरी-सी मुस्कान फैल गयी, "क्यों, तुम भी क्या गम गलत करना चाहते हो?" साथ ही वह बेमतलब खिलखिलाकर हंस भी पड़ा. उसे खिलखिलाना अच्छा लगा. वह समझ गया कि चीज अच्छी है, मिलट्री में अभी मिलावट शुरू नहीं हुई है.

उसने कुत्ते का बर्तन उठाया. मट्ठी का चूरा फर्श पर पटका. शराब ज्यादा और पानी कम मिलाकर उसके सामने कर दिया.

कुत्ते ने बर्तन को एक बार आकर सूंघा. फिर वह बर्तन से थोड़ा परे हटकर अपनी नस्ली मुद्रा में यानी कि पिछले दोनों पैर जमीन के साथ सटाकर चुपचाप बैठ गया और सांस लेने की वर्जिश करने लगा.

"क्यों अच्छी नहीं लगी? अच्छी तो मुझे भी नहीं लगती. लेकिन और चारा ही क्या इस बुरे वक्त से लड़ने के सिवा. हांऽऽलड़ ही तो रहे हैं, शराब पीना एक लड़ाई ही तो है!"

कुत्ते ने हल्के-से दुम हिलायी. उसे लगा कि उसने हां में हां मिलायी है. "थैंक्यू!" बोलकर उसने दूसरा गिलास भी आधा पी डाला और साथ ही कड़वाहट की मार से मुंह बिगाड़कर ऊपरवाले दांतों से जीभ साफ करने लगा.

अब वह बातचीत करने के मूड में था, अपने मन की भड़ास निकालने के मूड में. लेकिन किसके सामने निकाले? कुत्ता तो सिर्फ सुनना जानता है. और ज्यादा से ज्यादा दुम हिलाना. जिसका कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है. पक्ष का भी और विरोध का भी. उसने मुस्कराकर अपनी लड़खड़ाती आवाज में दलील दी, "पिंटू साहब, आदमजात सारी की सारी तुम्हारी ही बिरादरी की होती चली जा रही है. . . हूं!"

कुत्ते ने दुम हिला दी.

"लेकिन भेड़िये को भूख लगती है तो वह कुत्ते को भी नहीं बख्शता!"

पिंटू ने फिर दुम हिला दी.

और उसकी आवाज डर की सीमा पार करके गूंजने लगी, "मैं कहता हूं कि चापलूसी यानी कि कायरता की भी कोई सीमा होनी चाहिए. खस्सी हुए बैलों का भी कोई चरित्र होना चाहिए!"

इस बार पिंटू को लगा कि उससे कोई अपराध हो गया है. अपने स्वामी को उसने इस तरह के गुस्से में पहली बार

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा था. वह खड़ा हो गया और बिना पलके झुकाये उसकी तरफ हुक्म पाने की मुद्रा में देखने लगा.

कुत्ते से निराश होकर उसने एक घूंट और पी डाली. कुछ देर तो वह आंखों पर हथेलियां रखकर शांत बैठा रहा फिर झटके के साथ खड़ा हो गया और तर्जनी उंगली बाहर निकालकर कुत्ते को बच्चों की तरह समझाने लगा, "देखो, मैं कृष्णा और बबली का पता लगाने जा रहा हूं. जल्दी ही वापस आ जाऊंगा. और आते हुए कुछ खाने का सामान और पानी भी लेता आऊंगा. तुम उदास मत होना. हां, उदास मत होना. कोई दरवाजा खटखटाये तो बिलकुल नहीं खोलना. समझे! अरे हां, पानी लाने के लिए बर्तन तो ले लूं."

उसने केश संभालकर जूड़ा बांधा और लड़खड़ाता हुआ अंधेरे किचन के अंदर जा पहुंचा. खोज-खाज करके दूध लानेवाला पीतल का डिब्बा हासिल किया और उसे बाजू में लटकाकर बाहर निकल आया.

"देखो तुम उदास मत होना. डरना भी नहीं. मरना तो एक दिन है ही ना! समझे? जरूरत पड़े तो ये पी लेना. थोड़ी कड़वी तो जरूर लगेगी लेकिन जब चढ़ जायेगी तब. . ." उसने आंखें मटकायीं, "समझे?"

कुत्ते ने फिर हल्के-से दुम हिला दी.

इसके बाद उसने गिलास खाली कर दिया. पहले जाकर पेशाब किया. फिर कुत्ते को प्यार किया. पेंट की पिछली जेब पर हाथ लगाकर पर्स देखा, 'इसके बिना आज की दुनिया में सब बेकार है!' फिर मटकते हाथ से चिटखनी नीचे उतारी और गली में आ गया.

उसे पहला धक्का मरघट जैसे बेआवाज सन्नाटे का लगा. फिर भी बाहर की ताजी ठंडी हवा पर वह मुग्ध हो गया. उसे अपने पर गुस्सा आया कि वह बिना मतलब कायरों की तरह अंदर दुबका क्यों बैठा रहा. बाहर तो सब ठीक-ठाक है. गलियों में से शार्टकट करता हुआ वह थोड़ी ही देर बाद बांसांवाले बाजार में पहुंच जायेगा और वहां से खाना, पीना और परिवार को साथ लेकर शान से लौट आयेगा. कोई रोकेगा तो वह अपने दफ्तर का पता बता देगा. वह मशहूरो-मारूफ केंद्र के सरकारी दफ्तर का सरकारी मुलाजिम है, कोई ऐरा-गैरा नत्थूखैरा तो नहीं है.

उसने इत्मीनान से ताला लगाया, चाबी संभालकर जेब में डाली और फिर बार-बार जेब को थपथपाकर देखा. ताले को खींचकर देखने के लिए मुड़कर वापस आया तो उसे लगा कि कुत्ता दरवाजे पर पंजे रगड़ता हुआ दबी-दबी-सी आवाज में रो रहा है.

एक खयाल तो यह आया कि कुत्ते को भी साथ ले चले, अकेला कभी नहीं रहा, बहुत परेशान हो जायेगा. पर दूसरे ही क्षण उसने विचार बदल दिया. बस थोड़ी-सी देर की तो बात है, फिर घर की रखवाली के लिए भी तो किसी को होना ही चाहिए. . . वह चला और सड़क के बीचोंबीच आजाद कदमों से हवा को चक्कर में डालता हुआ आगे बढ़ने लगा.

वह अभी झंडेवाला चौक में ही पहुंचा था कि किसी अजनबी, खुर्दरी और तीखी आवाज ने उसे टोका, "हाल्ट!"

उसने गर्दन घुमाकर इधर-उधर देखा. पर अंधेरे में उसे कुछ भी दिखायी नहीं दिया. वह हड़बड़ाकर कदम तेजी से उठाने लगा. पर आवाज पहले से भी कहीं ज्यादा तल्ख हो उठी. और साथ ही बड़ी बैटरी की तेज रोशनी ने उसके गिर्द घेरा-सा बना दिया. उसे याद आया कि दहशत पसंद आमतौर पर इसी तरह की बड़ी-बड़ी हवेलियों में छुपकर बैठते हैं और जब जी चाहता है तब किसी पर भी गोली दाग देते हैं. सहसा उसके मन की नदी में गुरु गोविंद सिंह की वाणी के कंठस्थ किये शब्द तैरने लगे, 'देहु शिवा बर मोहिं इहै शुभ करमनि ते कबहूं न टरूं.' उसे लगा कि बुराई के सामने हथियार गिराना सबसे बड़ी बुराई है और वह 'जो बोले सो निहाल, सतश्रीअकाल!' का नारा लगाकर सड़क के बीचों-बीच तनकर खड़ा हो गया और बैटरी जलानेवालों को गालियां दे-देकर ललकारने लगा.

उसकी ललकार अभी पूरी भी नहीं हुई थी कि रोशनी भक-से बुझ गयी. रोशनी के साथ ही उसका ललकारना भी बंद हो गया. साहसी आदमी के लिए साकार चीजों से लड़ना आसान होता है लेकिन गैबी चीजों के सामने वह भी निहत्था हो जाता है. अब उसके सामने गहरे अंधेरे के सिवा कुछ नहीं था. काले-काले आकार जो पहले दिखायी दे रहे थे, चौंध खायी आंखों के सामने अब वे भी अंधेरे में गुम हो गये थे. कुछ और नहीं सूझा तो वह बर्तन को छाती के साथ सटाकर जिस तरफ भी सुझायी दिया भाग खड़ा हुआ.

अभी वह कुछ ही कदम भागा था कि रोशनी एक बार फिर बिजली की कौंध की तरह चमकी और दूसरे ही क्षण एक धमाके के साथ वह जैसे किसी गैबी दीवार के साथ टकरा गया. धनुष की डोरी टूटने की तरह एक बार उसका बदन फड़का और साथ ही वह औंधे मुंह नाली में जा गिरा.

दस मिनट बाद ही उसकी लाश हवेली से उतरे सिपाहियों के बीच घिरी थी. वायरलैस पर सूचना पाकर बड़े अधिकारी भी घटनास्थल पर पहुंच गये थे. पीतल के डिब्बे को देखकर वे सकते में आ गये थे. जिसे वे कुछ और ही समझ बैठे थे.

इधर कुत्ता गोलियों की आवाज सुनकर दरवाजे पर पंजे रगड़ता हुआ बेतहाशा भूंके चला जा रहा था. लेकिन उसकी आवाज सुननेवाला वहां कोई नहीं था. अगल-बगल के पड़ोसी भी नहीं, जो बलवा होने की खबर पाते ही घरों को ताले लगाकर अपने-अपने देवालय में सुरक्षित होने चले गये थे. □

● सरस्वती कालेज, अंबाला छावनी (हरियाणा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

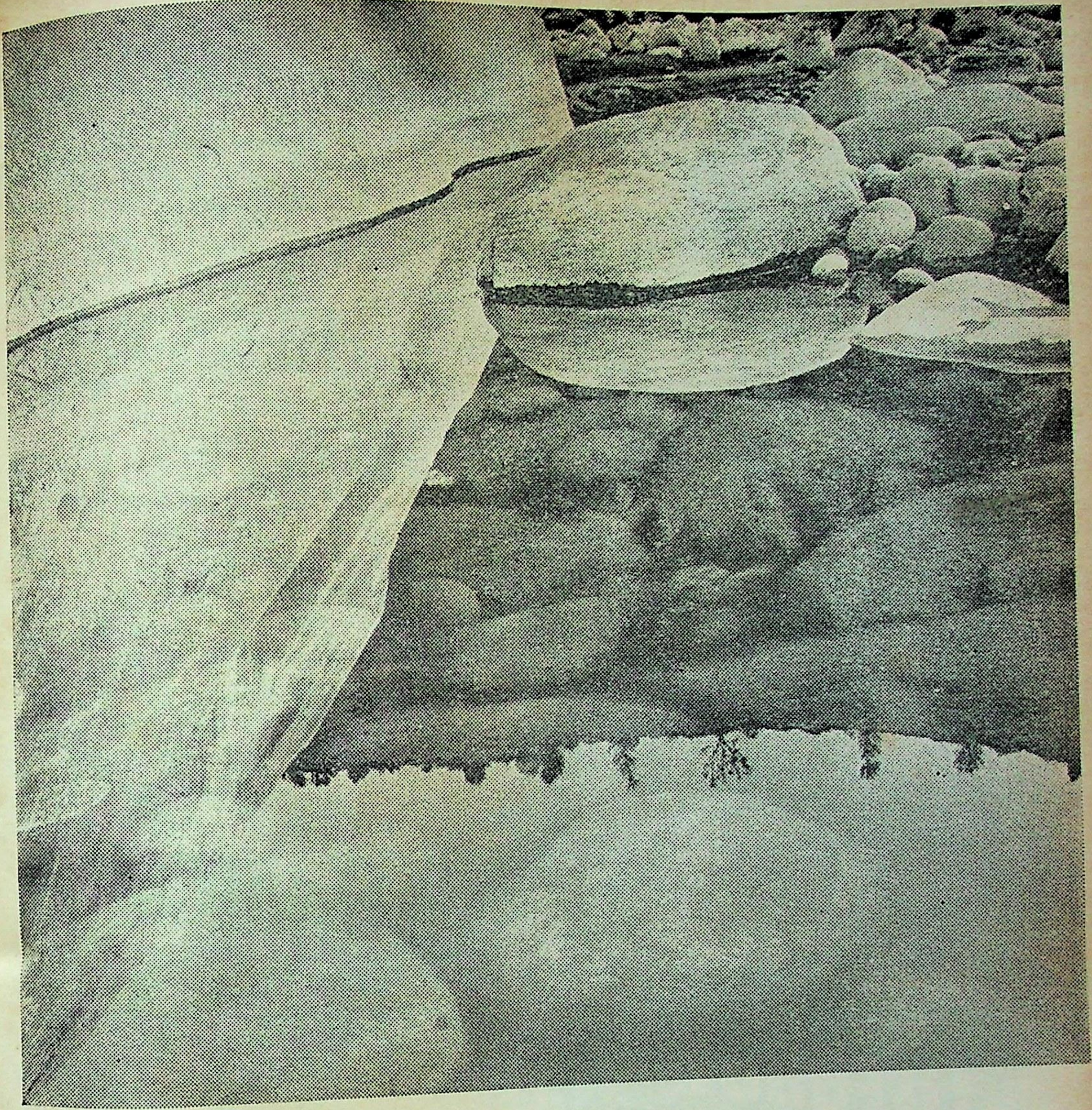

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित, 31 अक्तूबर, 1984 तक, इस पते पर भेज दें : संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 366) 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002. चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश: 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है'. बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

▫ छाया : रघु राय, द्वारा : इंडिया टुडे, दूसरी मंजिल, एफ-40, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-110001.

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाइफ़बॉय
है जहां
तन्दुरुस्ती
है वहां

लाइफ़बॉय है तन्दुरुस्ती का नाम.
दिन-भर की कड़ी मेहनत के बाद...
या जोशीले फुर्तीले खेल के बाद
लाइफ़बॉय से नहाने का मज़ा ही कुछ
और है... यह आप में फिर से सफ़ाई
और तन्दुरुस्ती की उमंग जगाता है!

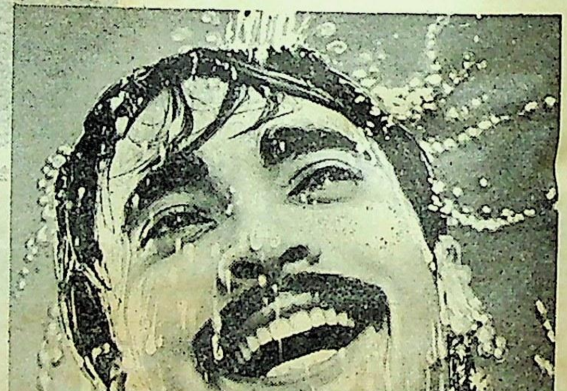

लाइफ़बॉय मैल में छिपे कीटाणुओं को धो डालता है.

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

LINTAS.L 88 2015 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज की कहानी पहले से ज्यादा ईमानदार है!

● बायें से--डा. रामदरश मिश्र एवं डा. महीप सिंह : क्या खयाल है आपका!

--डा. महीप सिंह, डा. हरदयाल, डा. रामदरश मिश्र, सुरेंद्र तिवारी, कुसुम अंसल, सुनीता जैन की अंतरंग बातचीत

महीप सिंह : अपनी बात यहां से शुरू करें कि हिंदी में कहानी संबंधी जो चर्चा है वह छठे दशक के मध्य से शुरू हुई थी और मेरा खयाल है कि रामदरशजी ने उसी समय से अपने कहानी-लेखन की शुरुआत की थी. वैसे चर्चा को गति सातवें दशक में ज्यादा मिली. तो जिस बिंदु से वह चर्चा हुई थी और जिस बिंदु पर आज हम हैं, उस यात्रा के बारे में आपका क्या खयाल है?

रामदरश मिश्र : 'नयी कहानी' का आंदोलन जब शुरू हुआ, उस वक्त मैं बनारस में था. उस वक्त हम वहां से 'हमारी पीढ़ी' नामक एक पत्रिका निकालते थे जिसमें मोहन राकेश की कहानी 'नये बादल' भी छपी थी. तब यह काफी नये ढंग की कहानी थी. उस वक्त 'नयी कहानी' की चर्चा शुरू हो ही रही थी. किंतु आंदोलन से पहले भी कुछ ऐसी कहानियां आने लगी थीं, जिससे आभास मिलने लगा था कि कहानी के क्षेत्र में नया कुछ हो रहा है, कुछ नये विचार सामने आ रहे हैं. उसके बाद जब 'कहानी' पत्रिका निकलनी शुरू हुई तो अपने स्वभाव में, भाषा में, शिल्प में अलग थी. 'नयी कहानी' की चर्चा उस समय शुरू हुई जब प्रगतिवादी और मनोवैज्ञानिक कहानी का जोर था किंतु 'नयी कहानी' उससे अपने को अलगा सकी, और मेरा खयाल है कि यह अलगाव ही उसकी अस्मिता, उसकी पहचान है. पिछली कहानियों के कुछ खास दायरे बन गये थे जिसे 'नयी कहानी' ने तोड़ा. जब परिवेशगत अनुभव की बात करते हैं--भौगोलिक और सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण 'नयी कहानी' में मिलता है पर व्यक्ति के अनुभवगत संसार के साथ जुड़कर. बाद में नगरीय कथाकार और ग्रामीण कथाकार का अलगाव शुरू हुआ. मुझे यह लगता है कि 'नयी कहानी' में मुख्यतः संबंधों की कहानियां हैं.

सुरेंद्र तिवारी : व्यक्तिगत स्तर की ज्यादा कहानियां हैं जबकि उसके पहले सामाजिक स्तर की कहानियां थीं. . .

रामदरश मिश्र : मैं अभी सिर्फ कहानी के स्वभाव की बात कर रहा हूं. कहानियों पर बात तो बाद में शुरू हुई.

हरदयाल : 'नयी कहानी' में निजी अनुभव और प्रामाणिक अनुभव पर ज्यादा बल दिया जाता था.

रामदरश मिश्र : इन कथाकारों ने संबंधों की कहानियां ही लिखीं. इसलिए यह भी कहा गया कि 'नयी कहानी' नये संबंधों की पहचान की कहानी है. तीसरी बात 'नयी कहानी' में आपको मूल्य बोध, मूल्य चेतना दिखाई देती है. इसका कारण है कि सब कुछ बिगड़ रहा है, नष्ट हो रहा है फिर भी मन में एक मोह है, एक लालसा है कि अभी भी कुछ अच्छा हो सकता है. 'नयी कहानी', 'नयी कविता' दोनों की बात मैं कर रहा हूं. ऐसा लगता है कि इन कवि-कथाकारों को विश्वास था कि कुछ नया होगा, जो बदलाव आ रहा है उसी में समाज के लिए कोई बेहतर चीज आयेगी या मानवीय मूल्यों को जिंदा रखनेवाली धारा बहेगी. दूसरी

पीढ़ियां
आमने-सामने

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

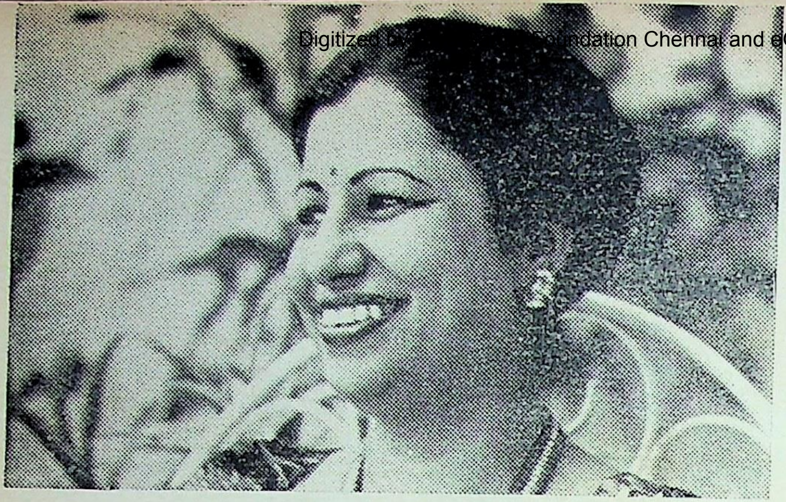

● कुसुम अंसल : जो समीक्षकों से परिचित नहीं, वह लेखक ही नहीं !

तरफ मन के भीतर की जो कहानियां थीं उनमें भी इन कहानीकारों का लगाव पूर्णतया खत्म नहीं हुआ था.

रामदरश मिश्र : उस काल की आलोचना पर ही पहले बात की जाये, यही ठीक लगता है. जैसा कि मैंने कहा, 'नयी कहानी' की चर्चा धीरे-धीरे जोर पकड़ती गयी. नये-नये लेखक तो सामने आये ही, नये आलोचक और समीक्षक भी सामने आये. नयी-नयी पत्रिकाएं शुरू हुईं. कुछ आलोचक तो उस वक्त इतने हावी हो रहे थे कि लग रहा था कि 'नयी कहानी' की बागडोर उन्हीं के हाथों में है.

हरदयाल : वैसे उस वक्त कहानी के क्षेत्र में गहमा-गहमी बहुत थी.

रामदरश मिश्र : गहमागहमी अच्छी भी थी, बुरी भी थी और मैं समझता हूं कि जब तक सहज भाव से कहानी-परिचर्चा होती रही तब तक अच्छी आलोचनाएं भी आयीं, समझदार आलोचक भी, किंतु बाद में जब कहानी से अलग हटकर कुछ कथाकारों को केंद्रबिंदु बनाकर चर्चाएं-परिचर्चाएं होने लगी तब आलोचना का सारा रूप ही बदल गया सारी आलोचना जैसे कुछ लोगों के पास ही सिमटकर रह गयी. धीरे-धीरे आलोचना में एक ठहराव-सा आ गया. साठ के बाद तो कहानी का रूप भी बदला और आलोचना का भी.

कुसुम अंसल : यह रूप का बदलाव आप किस अर्थ में मानते हैं?

रामदरश मिश्र : साठ के बाद कहानी के कई आंदोलन चले जिन्होंने 'नयी कहानी' से अपने को जोड़ना पसंद नहीं किया. 'अकहानी' ने तो 'नयी कहानी' के सारे ढांचे का ही निषेध कर दिया.

हरदयाल : उस पीढ़ी के भी कई कथाकार थे जिन्होंने अपने को 'नयी कहानी' से जोड़ना पसंद नहीं किया. सन् 57 में 'कहानी' पत्रिका के किसी अंक में लक्ष्मीनारायण लाल ने एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा कि 'नयी कहानी' से अपने को जोड़ने का अर्थ है अपने को कुंठित करना. इसलिए उन्होंने अपने को इससे अलग रखा.

सुरेंद्र तिवारी : लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी था. कुछ कथाकारों का एक ऐसा ग्रुप बन गया था जहां दूसरे कथाकारों का प्रवेश वर्जित था.

महीप सिंह : मैं समझता हूं कि यह बहुत व्यक्तिगत चर्चा हो जायेगी. इतना जरूर है कि जब भी कोई साहित्यिक चर्चा आंदोलन का रूप ग्रहण करेगी तो कुछ लोग उसके बाहर रह ही जायेंगे. इसके अनेक कारण हो सकते हैं. हो सकता है कुछ लोगों का लेखन उस दृष्टिकोण का न हो जो आंदोलन का आधार हो, कुछ लोग अन्य कारणों से भी अपने को आंदोलनों से अलग रखते हैं. . .

हरदयाल : नहीं, ऐसा था कि 'नयी कहानी' के जो अगुवा कथाकार थे उनकी प्रतिक्रिया ऐसी थी कि कुछ लोगों ने आंदोलन में शामिल होने से इनकार कर दिया.

महीप सिंह : ठीक है, यह भी ठीक है.

हरदयाल : उसी तरह, बाद में जो आंदोलन चले, सन् 60 के बाद, उन लोगों ने भी उसी तरह 'नयी कहानी' की आलोचना की, उसके नकारात्मक पक्ष को सामने रखा. जैसे 'सचेतन कहानी' का आंदोलन. यह भी तो एक ऐसा ही आंदोलन ही था, जिसके केंद्र में महीपजी थे.

महीप सिंह : मैं समझता हूं कि 'नयी कहानी' को लेकर जो प्रतिक्रिया हमारे समय में, सन् 64-65 के आसपास, शुरू हुई उसमें मूल बात यह थी कि उस वक्त तक कहानी की चर्चा काफी आगे बढ़ चुकी थी किंतु यह दो-चार पांच लोगों के इर्द-गिर्द ही केंद्रित हो गयी थी. दूसरी बात, हमें महसूस हो रहा था कि जो कहानी 'नयी कहानी' के नाम पर लिखी जा रही है उसमें पूरी तरह ठहराव आ गया है. रामदरशजी ने मूल्यबोध की बात की, मुझे लगता है कि मूल्यबोध के साथ मूल्य-संकट उस समय का कथाकार महसूस कर रहा था. कुछ मूल्यों के टूटने का जो दर्द उस समय का कथाकार अनुभव कर रहा था उससे लग रहा था कि ये सारे कथाकार अपनी कहानियों में कहीं आकर ठहर गये हैं. और वे ठहरे हैं दो बिंदुओं पर. एक बिंदु तो है कि जो पश्चिम से हवा चल रही है उससे प्रभावित होकर वे सोचने लगे हैं कि हम भविष्यहीन हो गये हैं, कहानी अंधेरे में एक चीख जैसी बन गयी है और आज की स्थिति में व्यक्ति एक ऐसी अवश या विवश परिस्थिति में पहुंच गया है, जहां से उसे कोई रास्ता नजर नहीं आता. दूसरी बात जो थी, हमें लग रहा था कि ये कथाकार मूल्यों के टूटने के दर्द को लगातार चित्रित कर रहे थे. हमने यह महसूस किया कि इस ठहराव को तोड़ना जरूरी है. इस कारण जब 'सचेतन कहानी' की चर्चा शुरू हुई और कहा गया कि सारी बदलती हुई स्थितियों में व्यक्ति अपने-आपको सहज बनाता है, जिंदगी जीना मात्र ही नहीं है बल्कि उसे जानना भी है. परिवर्तित स्थितियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ जो अपनी मानसिकता को जोड़कर चलेगा वह जीवन को जानेगा. इस अंतर को महसूस करने के बाद 'सचेतन कहानी' की चर्चा हुई.

सुनीता जैन : कुछ टूट गया है यह समस्या है किंतु जीते रहना तो उससे भी बड़ी समस्या है. और उसके जितने भी फंक्शनल या प्रैक्टिकल आस्पेक्ट्स हैं उनसे जुड़कर कहानीकारों ने कहानियां लिखीं. यह स्थिति 70-72 तक रही किंतु उसके बाद जो कहानी का रूप बना . . .

महीप सिंह : उस काल के बारे में आप खुद ही कुछ बता सकती हैं क्योंकि तब तक आप कहानी के क्षेत्र में आ गयी थीं, आपका संग्रह भी शायद आ चुका था. उस दौरान आप ज्यादातर अमरीका में रहीं. वहां के साहित्य को भी आपने नजदीक से देखा-परखा. उस वक्त वहां जो कुछ लिखा जा रहा था और यहां की स्थितियों में जो कुछ लिखा जा रहा था, उसमें कुछ अंतर आपको लगा?

सुनीता जैन : मैं समझती हूं कि उस वक्त का परिवेश इतना व्यापक था कि कहानी कहीं से भी उठ सकती थी. और एक परिवेश जो आपकी उपलब्धि है उस पर आपका अपना अधिकार था. किंतु 70 के आसपास के जो भी लेखक थे उनके सामने पहले के कमाये हुए कुछ भी पैमाने काम नहीं आ रहे थे. जो कुछ भी वे भोग रहे थे, जैसा जी रहे थे, उसी में से कुछ हासिल करके उन्हें कहानी लिखनी थी.

कुसुम अंसल : सुनीता, यहां एक बात मैं कहूं, कुछ लोग किसी आंदोलन से जुड़ने के बाद उसी तरह की, उसी चेतना की कहानियां लिखने लगते हैं. . .

सुनीता जैन : लिखते होंगे, पर अधिकांश लेखक किसी आंदोलन से जुड़कर कहानी नहीं लिखते, लिख नहीं सकते. महिला कथाकारों को लेकर यह कहा जा रहा है कि इसलिए छप रही हैं कि ये महिला हैं. मैं समझती हूं कि कहानी के प्रति, लेखिकाओं के प्रति यह एक खास तरह का व्यंग्य है.

कुसुम अंचल : उससे भी थोड़ा ज्यादा स्पष्ट कहो तो पुरुषों द्वारा महिलाओं पर 'साहित्यिक अत्याचार' है.

सुनीता जैन: हां, यह अपमान तो है ही लेखिकाओं का. क्या महिलाओं में वे सारी संवेदनाएं, अनुभूतियां नहीं होती जो पुरुषों में होती हैं? किंतु कुछ आलोचक इस सच्चाई को हमेशा झुठलाते हैं. आलोचक का काम तो द्वितीय श्रेणी का काम है. वह जो कुछ कहता है वह किसी रचना के लिखे जाने के बाद कहता है. महिलाओं के लेखन का एक अलग स्वरूप है. जीवन का रूप इतना व्यापक है कि उसे पूरा का पूरा पुरुष पकड़ पाये, यह संभव नहीं. आजादी से पहले आर. के. नारायण मुल्कराज, आनंद, खुशवंत सिंह जैसे दो-चार अंग्रेजी में लिख रहे थे और आज भी उन्हीं की चर्चा है, जबकि आजादी के बाद अंग्रेजी में लिखनेवाली बीसियों महिलाओं का नाम अभी मैं गिना सकती हूं, जिनकी बराबर चर्चा होती है.

डा. हरदयाल : नयी कहानी के वक्त गहमा-गहमी थी बहुत.

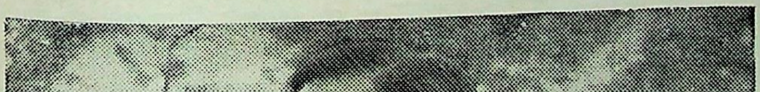

महीप सिंह : सुनीता, अभी आपने कहा कि अंग्रेजी में स्वतंत्रता के बाद बीसियों महिलाएं लिख रही हैं तो क्या उनके साथ भी हिंदी की तरह ही व्यवहार किया जाता है?

सुनीता जैन : नहीं, एकदम नहीं.

महीप सिंह : इसका कारण आपको क्या लगता है?

सुनीता जैन : अंग्रेजी की मानसिकता हिंदी की मानसिकता से भिन्न है. एक तो आलोचक उतना प्रेस्क्रिप्टिव नहीं है जितना मैं हिंदी में पाती हूं. यह मेरा अपना मत है. एक अच्छा आलोचक होने के लिए किसी भी आलोचक में एक व्यापक संवेदना, एक गहरी संवेदना की जरूरत होती है, किंतु हिंदी के आलोचकों में इसकी बहुत कमी है. उसका क्रियेटिव रोल नहीं रह गया है. वह यह बताता है कि ऐसा लिखना चाहिए, वैसा लिखना चाहिए. अपने मापदंड से वह लिखवाना चाहता है. हिंदी आलोचकों की यह मानसिकता है कि वे यह सोचते हैं कि हम अमुक लेखक का नाम लेंगे तो वह साहित्यकार बना रहेगा, नाम नहीं लेंगे तो मिट जायेगा.

कुसुम अंसल : नामवर सिंह तो उन्हीं को लेखक मानते हैं जिनको वे जानते हैं. अगर उनसे कोई परिचित नहीं है तो वह लेखक ही नहीं है. ऐसी सोच के के लोग हिंदी में आलोचना के मानदंड का दंभ भरते हैं--

सुरेंद्र तिवारी : मुझे लगता है कि आलोचना का जो रूप बिगड़ा है उसमें दूसरी बातों का ज्यादा महत्व है. पोलिटिकल कमिटमेंट, आइडियालॉजी आदि के सिद्धांतों पर जो आलोचना होगी वह सही अलोचना कैसे हो सकती है?

सुनीता जैन : परंतु अंग्रेजी में ऐसा क्यों नहीं है?

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदरश मिश्र : वास्तव में अंग्रेजी लेखन का संबंध हमारी जमीन से उतना नहीं है जितना हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं का है. और आज का जो आलोचक है, आप पार्टीबाजी की बात छोड़ दीजिए, प्रोफेशनल रिव्यूअर की बात भी छोड़ दीजिए, जो सही आलोचक है वह बहस कर रहा है कि क्या आज का हमारा लेखन जन-साधारण के जीवन से कहीं कुछ जुड़ता है? इसी संदर्भ में वह महिला लेखन को भी देखता है. महिलाएं जो बात कह रही हैं, क्या उसका संदर्भ व्यापक है या व्यक्तिगत दायरों में ही सिमटा हुआ है?

हरदयाल : रामदरशजी ने अभी एक बात कही कि लेखिकाएं साधारणतया घर-परिवार की ही बात करती हैं. कुसुमजी, क्या आप भी ऐसा ही सोचती हैं?

कुसुम अंसल : ऐसा नहीं कि महिलाएं सिर्फ घर-परिवार की ही कहानियां लिखती हैं. महिला लेखन का दायरा तो बहुत बड़ा है, पर उधर लोग ध्यान देते ही नहीं. अब मैं आपको एक बात बताऊं, जैसा कि महीपजी ने कहा, 'सचेतन कहानी' की चर्चा जब शुरू हुई उस वक्त हिंदी में ठहराव आ गया था और ऐसी कहानियां लिखी जा रही थीं जो अपठनीय थीं, कमजोर, एनेमिक. उस वक्त ऐसा लगा कि कुछ नया आये. इसी प्रकार इस बीच भी कुछ ऐसा हुआ कि अनेक लेखकों, विशेषरूप से लेखिकाओं की कहानियां आयीं कि उसने कथा-साहित्य में कितने नये आयाम जोड़े, इनको नकारकर आप आगे क्यों नहीं जा सकते. इस बीच जो कहानियां लेखिकाओं द्वारा आयीं हैं वे नये मुद्दों की हैं. . .

महीप सिंह : इस संदर्भ में मैं एक बात कहूं. कहानी या किसी भी साहित्यिक विधा का संकट और संकट से निवारण जो मुझे लगता है वह यह है कि कितनी भी अच्छी चीजें एक समय में लिखी जा रही हों, कुछ समय बाद उनमें एक ठहराव आ ही जाता है. छायावादी युग में जो कविताएं लिखी गयीं, निश्चित रूप से

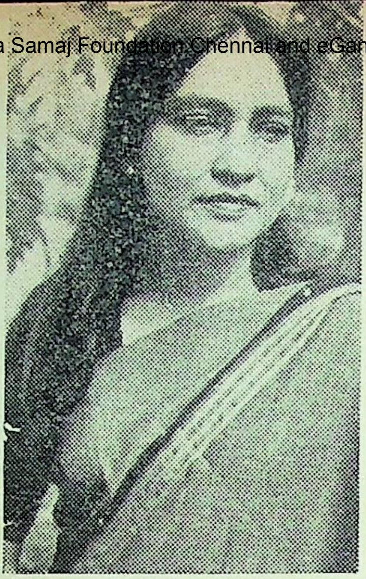

सुनीता जैन : अंग्रेजी में ऐसा नहीं है!

काफी अच्छी कविताएं थीं. किंतु दस-पंद्रह साल बाद ही लगने लगा कि उनमें ठहराव आ गया है. उसको तोड़ने की जरूरत है. इसी तरह 'नयी कहानी' की मैंने चर्चा की. इसी के साथ एक बात कि परिवेश में कुछ और चीजें उभर आयी, कुछ नयी समस्याएं, कुछ नये प्रश्न सामने आये जिधर लेखक का ध्यान जाना चाहिए.

सुनीता जैन : अभी जो बात हो रही थी कि महिलाएं घर-परिवार की बात ही लिखती हैं तो क्या घर-परिवार का कैनवास कोई छोटा है? उसका भी हर पांच वर्ष में रूप बदल जाता है.

महीप सिंह : मैं आपसे सहमत हूं कि परिवार की समस्याएं कभी चुक नहीं जाती. फिर नये प्रकार के परिवार भी बने हैं. उदाहरण के लिए सिम्मी हर्षिता की एक कहानी है—'बंद कमरे में आभास'. इसमें होस्टल में रहनेवाली लड़कियों का संकट है, त्रासदी है. यह एक बहुत अच्छी कहानी लगी मुझे. सिम्मी की एक दूसरी कहानी है, शायद 'अनियंत्रित.' एक परिवार में एक बालक बोल नहीं सकता. उस न बोल सकनेवाले बालक के साथ परिवार के लोग किस तरह का व्यवहार करते हैं, उनके बीच वह कैसे जीता है.

कुसुम अंसल : हां, इस तरह परिवार के बीच न जाने कितनी समस्याएं हैं जिन्हें शायद पुरुष अनुभव नहीं कर पाता. उसके सामने जीविका का प्रश्न इतना प्रमुख है कि घर-परिवार की तरफ उसका शायद ध्यान ही नहीं जाता. किंतु एक महिला इसे समझती है, पकड़ती है और लिखती है तो इसमें अपराध क्या है?

महीप सिंह : लेखन की व्याकुलता और छटपटाहट के कारण ही इतने सारे प्रश्नों से हमें जूझना पड़ता है और मेरा खयाल है कि यह व्याकुलता आज की पीढ़ी में हमसे भी कहीं ज्यादा है, क्यों सुरेंद्र?

सुरेंद्र तिवारी : जी हां, क्योंकि आज की पीढ़ी को न जाने कितने-कितने मोर्चों पर एक साथ लड़ना पड़ रहा है.

महीप सिंह : इस संघर्ष को तुमने अपनी कहानियों में भी उभारा है, इस पीढ़ी के और भी बहुत से कथाकारों ने किया है. परंतु मेरा खयाल है कि तुमने इस संघर्ष को ज्यादा नजदीक से देखा है. तुम महानगरों में रहे हो और गांवों में भी. एक सामाजिक व्याकुलता जो पिछले चौदह-पंद्रह सालों में अनुभव की गयी और अभी भी की जा रही है इस पर तुमने या तुम्हारे साथ के लेखकों ने किस तरह रिएक्ट किया?

सुरेंद्र तिवारी : व्याकुलता जितनी सामाजिक है उससे अधिक आर्थिक है. जहां तक मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है, मेरी तो अधिकांश कहानियां इसी उथल-पुथल की कहानियां हैं. कलकत्ता में नक्सली क्रिया-कलापों को बहुत नजदीक से मुझे देखने का अवसर मिला और मेरा लेखन उससे बहुत प्रभावित हुआ. लेकिन मैं समझता हूं कि आज की कहानियों में जो राजनीतिक दृष्टिकोण आपको दीखता होगा वह पूर्ववर्ती कहानियों से भिन्न है. उसके कई कारण हैं. असल में कहानी आंदोलनों ने कहानी को जीवन की सहजता से काट दिया था. उन कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता था कि इनसे हमारा कोई लगाव नहीं है क्योंकि इनमें हमें अपने जीवन की कोई सच्चाई नजर नहीं आती थी. जिस संघर्ष के बीच हम जी रहे हैं, पढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखकर कालेज-यूनिवर्सिटी से निकलते हैं, कहीं कोई नौकरी नहीं मिलती, चारों तरफ झूठ, बेईमानी और फरेब ही फरेब दीखता है, बुजुर्गों के झूठे आश्वासनों की कहीं कोई जड़ नहीं, तो स्वाभाविक है कि ऐसे युवा-वर्ग के मन में एक असंतोष पैदा होगा ही. उनके मन में सत्ता और व्यवस्था के प्रति असंतोष है, और इसको प्रकट करने के लिए वह सामाजिक मान्यताओं को तोड़ता है या फिर हथियार उठाकर नक्सली बन जाता है. हुआ यह कि इस पीढ़ी ने जब अपने को, अपनी स्थितियों को सही रूप में प्रस्तुत करना शुरू किया तो एक वर्ग बौखला उठा. सत्ता और व्यवस्था से जुड़े लोगों को ऐसी कहानियां और ऐसे कथाकार खतरनाक लगे.

हरदयाल : लेकिन इस तरह की कहानियां तो बाद में भी लिखी गयीं.

सुरेंद्र तिवारी : हां, लिखी जाती रहीं, अभी भी लिखी जा रही हैं. किंतु मैं एक-दो लेखकों की बात नहीं कर रहा हूं, एक पूरी पीढ़ी की बात कर रहा हूं.

महीप सिंह : लेकिन इस बीच में ऐसी भी बहुत-सी कहानियां आयीं जो अपने समय की राजनीति से, अपने समय के सामाजिक आंदोलन से, सामाजिक बेचैनी से भी जुड़ी थीं. दंगों की पृष्ठभूमि में, नक्सली आंदोलन के परिणामस्वरूप बहुत से व्यक्तियों को किस तरह मौत के घाट उतारा गया, इन सबका भी यथार्थ चित्रण कहानियों में हुआ. संजीव की कहानी 'अपराध' अभी भी इस संदर्भ में मुझे याद है.

कुसुम अंसल : मुझे एक बात से बहुत पीड़ा होती है कि कुछ लोग हिंदी कहानी को बहुत ही गलत संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं. हमारे एक प्रबुद्ध आलोचक का कहना है कि आज कहानी लिखी ही नहीं जा रही. परंतु ऐसा कभी नहीं हुआ. पिछले तीस वर्ष का इतिहास आप देखें तो पायेंगे कि हिंदी कहानी का जो रूप इस समय है वह बेहद समृद्ध है.

महीप सिंह : मेरा खयाल है अब एक बात हरदयालजी से पूछनी चाहिए, जो एक समीक्षक हैं और जो कहानियां नहीं लिखते. आलोचक जब कहानियों पर कुछ कहना शुरू करता है और कई बार जब वह कुछ नहीं लिखता तब भी यह फतवा देता है कि आज ऐसा कुछ लिखा ही नहीं जा रहा जिस पर वह कुछ कह सके.

सुरेंद्र तिवारी : मोर्चे कई हैं

सुनीता जैन : इसके साथ ही एक आरोप और भी मैं आलोचक पर लगाना चाहूंगी कि वह बिना पढ़े ही अक्सर अपनी राय प्रकट करता है.

कुसुम अंचल : यह तो उसकी निष्क्रियता है, स्नावरी है, लेज़ीनेस है, और कुछ नहीं. क्या उनका लेखन केवल उनके नकार से महत्वहीन हो जायेगा?

महीप सिंह : प्रश्नों का ज्यादा जाल न फैलाकर हम सिर्फ इतना समझें कि हमारे सामने अभी दो मुद्दे हैं जिन पर विचार करना है. एक तो जो सुरेंद्र ने बात उठायी कि एक समय का एक चालू मुहावरा बन जाता है या फार्मूलाबद्ध होकर कहानियां लिखी जाती हैं. और दूसरी बात यह है कि आलोचकों की स्थिति समकालीन लेखक के साथ सहभोक्ता की है या एक ऐसे महंत की जो दूर बैठकर ही फतवे दिये जा रहा है?

सुरेंद्र तिवारी : एक बात और मैं कहूं, क्या यह जरूरी है कि एक आलोचक किसी को व्यक्तिगत रूप से जानने के बाद ही उसे लेखक माने?

हरदयाल : नहीं, यह तो कतई जरूरी नहीं है. लेखक-आलोचक व्यक्तिगत रूप से एक-दूसरे को जानें, यह आलोचना की कभी भी शर्त नहीं रही. समकालीन कहानी को जो आलोचना है उसमें बहुत-सी परेशानी हैं. सबसे बड़ी परेशानी तो यह है कि आज बहुत बड़ी तादाद में कहानियां लिखी जा रही हैं. छप रही हैं. किसी भी एक व्यक्ति के लिए इन सारी कहानियों को पढ़ना और उसमें से अच्छी कहानियों को छांटना मुश्किल कार्य है. इसलिए होता यह है कि जब हम किसी शिल्प की बात कर रहे होते हैं या कथ्य की बात कर रहे हैं तो कहानियों की चर्चा करते हुए हम एक पंक्ति लिखना भूल जाते हैं कि हमने जिन कहानियों को चर्चा के लिए चुना है उन्हें अपनी सामर्थ्य और सुविधानुसार चुना है. यह एक विवशता है, इसलिए आप पायेंगे कि किसी एक आलोचक ने किसी संदर्भ में किसी कहानी की चर्चा कर दी तो उसके बाद अधिकांश आलोचक उस संदर्भ में उसी कहानी की चर्चा करेंगे. परिणाम यह होता है कि दूसरी कहानियां निश्चित रूप से छूट जाती हैं. इसी कारण हिंदी में मौलिक आलोचकों की भी कमी है. एक बात और भी महसूस होती है कि ऐसी कहानियां अधिक नहीं लिखी जा रही हैं जो आलोचक के लिए एक चुनौती बन सकें. जो कहानियां सचमुच सृजनात्मक होती हैं, एक नयी संवेदना को, एक नयी दृष्टि को सामने रखती हैं उनकी चर्चा अवश्य होती है. हो सकता है इसमें देर हो परंतु चर्चा होती है.

सुनीता जैन : हो सकता है चर्चा ऐसी जगह हो जहां कोई आवाज ही नहीं आये.

हरदयाल : हो सकता है, यह भी हो सकता है. सन् 70 से पहले ऐसी कई पत्रिकाएं थीं—'कहानी', 'कल्पना' आदि भी— जिन्हें हम व्यावसायिक नहीं कह सकते, उनमें कहानियों की अच्छी चर्चा होती थी. एक मंच होता था, आप खुलकर बात कर सकते थे.

कुसुम अंसल : आप पत्रिका की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात छोडिए, आज हमारा आपसी संवाद ही कितना है? आपस में किसी कहानी पर बातचीत करना भी हम गवारा नहीं करते, आलोचना तो बहुत दूर की बात है.

हरदयाल : इस हिसाब से अगर आप यह कहें कि कहानी की चर्चा आज नहीं होती तो ऐसा नहीं है. नये से नये कहानीकार की चर्चा होती है परंतु उसका प्रसार उतना नहीं है. आज कहानियों पर सबसे अधिक शोध-प्रबंध आ रहे हैं, वे सभी छप नहीं पा रहे हैं यह अलग बात है, इन प्रबंधों में आपको नवीनतम कहानी और कहानीकारों पर चर्चा मिलेगी. फिर दूसरी प्रवृत्ति भी तेज हो रही है कि किसी एक कहानी को आधार बनाकर विश्लेषणत्मक लेख लिखे जा रहे हैं.

सुनीता जैन : अभी जो कुसुम आपसी संवाद की बात कर रही थी. उस पर हमें ध्यान देना चाहिए. चर्चा-परिचर्चा का सारा स्वरूप ही खत्म हो गया है. पहले लोग किस तरह एक-दूसरे की रचनाओं को पढ़ते थे, उन पर बात करते थे, परंतु आज, पहले तो कोई पढ़ता नहीं ही, अगर भूले-भटके पढ़ भी लेता है तो चुप्पी साधे रहता है.

हरदयाल : मुझे खुद याद है, 65-66 में पांच काव्य संध्याएं हुई. लगातार पांच दिनों तक काव्य चर्चाएं होती रहीं. इसी तरह कलकत्ता के कथा-समारोह को लें. एक समारोह जो पहले हुआ और एक अभी-अभी हुआ है. अभी जो हुआ है उसकी एक संक्षिप्त-सी खबर एक-दो पत्रिकाओं में छपी जबकि पहला समारोह जो हुआ था उसकी रिपोर्ट कितने व्यापक रूप से छपी थी.

सुरेंद्र तिवारी : 'ज्ञानोदय' ने एक पूरा अंक निकाला था उस पर.

महीप सिंह : हरदयालजी, आपका पूरा जोर सिर्फ पत्रिकाओं के होने न होने पर है. मैं इससे सहमत नहीं हूं. पत्रिकाएं एक समय नहीं भी होंगी. जो व्यावसायिक दबाव आज हिंदी पर है या अन्य भारतीय भाषाओं पर है उसके कारण साहित्य से जुड़ी जो एक-दो पत्रिकाएं हैं वे भी खत्म हो जायेंगी. इसका यह अर्थ नहीं कि आलोचक की जागरूकता भी खत्म हो जायेगी, उसका दायित्व खत्म हो जायेगा. जो प्रोफेशनल रिव्यूअर हैं उनको जरूर घाटा होगा. मगर क्या आलोचक उस वक्त अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा?

सुनीता जैन : हरदयालजी ने एक बात बहुत अच्छी कही कि आज भी अच्छी आलोचना हो रही है परंतु उसकी खबर हमें नहीं होती.

महीप सिंह : नहीं, नहीं. इन्होंने यह बात नहीं कही, बल्कि इन्होंने कहा कि शोध बहुत अच्छे लिखे जा रहे हैं.

हरदयाल : मैंने प्रबंधों के अच्छे होने की बात नहीं की, मैंने यह कहा है कि जो शोध प्रबंध लिखे जा रहे हैं उनमें नवीनतम कहानियों की भी चर्चा होती है. इधर कहानी समीक्षा की कुछ पुस्तकें भी आयी हैं——मधुरेश, नरेंद्र मोहन, विनय आदि की, पर व्यवस्थित ढंग से कुछ नहीं हो रहा है.

क्या तमाम आलोचक आज कटघरों में नहीं बंट गये हैं? स्थापित आलोचक कभी नये लोगों की चीजों को नहीं पढ़ेंगे. उस पर कुछ नहीं लिखेंगे. . .

रामदरश मिश्र : देखिए, अभी तक जो आपने बातें कहीं उन्हें टू दि फैक्ट कहा जा सकता है, यानी ऐसा ऐसा है. क्या तमाम आलोचक आज कटघरों में नहीं बंट गये हैं? यह हम जानते हैं कि जो स्थापित आलोचक हैं वे कभी भी नये लोगों की चीजों को नहीं पढ़ेंगे.

कुसुम अंसल : इसके साथ भी तो एक मुश्किल है, जहां ये किसी नये का नाम लेते हैं तो कुछ लोग इन पर आरोप लगाना शुरू कर देते हैं.

सुनीता जैन : इनको मालूम नहीं कि हिस्टोरियन का काम क्या होता है.

रमदरश मिश्र : देखिए, आलोचक कहां आज गलती कर रहा है वह मैं आपको बताता हूं. हमेशा कुछ न कुछ लेखक किसी न किसी आंदोलन से जुड़कर लिखते रहे हैं और जब हिंदी कहानी का साहित्य लिखा जायेगा तो इन लोगों का नाम आंदोलन के साथ-साथ निश्चित रूप से सामने आ जायेगा. परंतु ऐसे भी बहुत सारे लेखक रहे हैं जो ज्यादा जेनुइन होने के साथ-साथ अच्छा भी लिख रहे थे, परंतु किसी आंदोलन से नहीं जुड़े थे. अब एक आलोचक जब इतिहास लिखता है तो निश्चित रूप से वह ऐसे नामों को छोड़ देता है. क्या आलोचक का यह दायित्व नहीं होता कि इन कटघरों को तोड़कर जो जेनुइन राइटिंग है, उसकी भी पहचान करे?

महीप सिंह : कड़वी-मीठी दोनों बातें हैं. मैं तो यह मानता हूं कि आलोचक का व्यक्तित्व हमेशा समकालीन कथाकार के व्यक्तित्व से अगर बड़ा नहीं तो छोटा भी नहीं रहा है. रचनाकार की जागरूकता, समय यथार्थ से जुड़ी रचना किसी भी आलोचक के लिए हमेशा चुनौती बन सकती है. मुझे अपने-आप में पिछले 10-12 सालों में यह बात हमेशा चुनौतीपूर्ण लगी है कि हिंदी में कहानी का, कथा-वस्तु का जितना व्यापक विस्तार हुआ है, वह अद्भुत है. सन् साठ तक हिंदी का लेखन मध्यवर्ग के परिवार की समस्याओं का लेखन था, बाद में वह बदला. एक समय उस वर्ग की कहानियां भी बड़ी तेजी से आयीं जिस वर्ग से हमारा ज्यादा परिचय नहीं था. अछूत वर्ग, दलित वर्ग. भिखारियों की कहानियां, बीमारों की कहानियां, अस्पतालों की कहानियां. मुझे सुरेंद्र तिवारी की कहानी 'वार्ड नंबर टू' अभी भी याद है जिसमें अस्पताल की जिंदगी का यथार्थ चित्रण था. जगदंबा प्रसाद दीक्षित की कहानियां या शैलेश मटियानी की कहानियां जो भिखारियों और कोढ़ियों पर लिखी गयी, बहुत यथार्थपूर्ण कहानियां हैं, बनावटी नहीं, सामने आयी. दूसरी तरफ वे कहानियां हैं जो उच्च वर्ग के खोखलेपन और यथार्थ को हमारे सामने रखती हैं. कुसुम की बहुत सारी इस तरह की कहानियां हैं. इन दोनों ही वर्गों से हिंदी पाठकों का विशेष परिचय नहीं था. ये मुझे बराबर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनौती देनेवाली कहानियां लगी हैं. हिंदी कहानी का दायरा इस तरह एकदम बढ़ा. सन् 50-60 के बीच जो कहानियां छपती थी उनमें ख्वाजा अहमद अब्बास, इस्मत चुगताई, वाजिदा तबस्सुम आदि की कहानियां भी छपती थी और इन नामों को पढ़ने से ही हम समझ जाते थे कि ये उर्दू की कहानियां होंगी. आज स्थिति एकदम उलटी है. इब्राहिम शरीफ, शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, आलमशाह खान, नफीस आफरीदी आदि का नाम पढ़कर अब आपको नहीं लगता कि ये उर्दू की कहानियां हैं क्योंकि ये सभी हिंदी में लिख रहे हैं, हिंदी के कथाकार हैं. इस तरह यह दायरा कितना बड़ा हुआ है. इन तमाम लेखकों ने एक व्यापक और हमारे लिए अनजान परिवेश को हमारे सामने रखा है. इसी तरह सिख परिवेश का, क्रिश्चियन परिवेश का जो समावेश हिंदी कहानियों में हुआ है वह क्या आपके या आलोचक के लिए चुनौतीपूर्ण नहीं लगता?

कुसुम अंसल : पर कितने आलोचकों की नजर ऐसी कहानियों की ओर उठती है?

हरदयाल : नहीं, समकालीन कहानियों की आलोचना भी आज खूब लिखी जा रही है. लेकिन इससे पहले आपको यह भी फैसला करना पड़ेगा. कि कौन आलोचक है, कौन नहीं. यहां भी जेनुइन राइटिंग का प्रश्न उठता है.

महीप सिंह : बिल्कुल. कम से कम हिंदी में तो यह स्थिति साफ होनी ही चाहिए. फिर जो रिव्यूअर हैं उन्हें आलोचक कहना भी गलत है. आलोचक को आज के लेखन के संदर्भ में सोचना होगा.

कुसुम अंसल : नामवर सिंह जैसे आलोचक तो इधर के लेखक को लेखक मानते ही नहीं.

हरदयाल : उनका इसमें क्या दोष है? वे 'नयी कहानी' के आलोचक थे, उस धारा के साथ ही खत्म हो गये.

सुरेंद्र तिवारी : मैं समझता हूं कि हम व्यक्तिगत बातों पर ज्यादा आ रहे हैं. असल में आज भी आलोचनाएं लिखी जा रही हैं परंतु आज की आलोचना दो गुटों में बंट गयी है. जो लोग आलोचना लिख रहे हैं वे कहानियों को अपनी आइडियोलाजी के हिसाब से ही पढ़ते हैं. उसी हिसाब से उस पर निष्कर्ष निकालते हैं.

महीप सिंह : आप ऐसे कुछ आलोचकों के नाम बतायेंगे जो दलगत राजनीति के आधार पर आलोचना लिख रहे हों?

सुरेंद्र तिवारी : कई हैं. परंतु मैं दिल्ली के ही कुछ आलोचकों की बात करूं—सुधीश पचौरी, कर्ण सिंह चौहान, मैनेजर पांडे, राजकुमार सैनी.

महीप सिंह : जिस प्रकार के आलोचकों की चर्चा हो रही है, क्या इन्हें उनमें शामिल किया जा सकता है? दिल्ली से बाहर दलगत राजनीति या गुटबंदी से दूर ऐसे अनेक युवा आलोचक सामने आ रहे हैं, जो कहानियों पर ज्यादा सही ढंग से लिख रहे हैं, जैसे पुष्पपाल सिंह, हेतु भारद्वाज, वेद प्रकाश अमिताभ, डा. ज्ञान अस्थाना, कीर्त्ति केसर.

रामदरश मिश्र : देखिए, जो कहानी के मूल्यांकन की बात है वह समय-सापेक्ष है. अच्छी रचनाएं आज नहीं तो कल अपनी तरफ आलोचक को आकृष्ट करती ही हैं और वह विवश होता है कि उस पर लिखे और तब जो वह लिखेगा वह निश्चित रूप से तटस्थ होकर लिखेगा. उसकी संपूर्णता को, उसकी चुनौती को, उसकी गुणवत्ता को पहचानकर लिखेगा. परंतु मैं यह भी समझता हूं कि एक आलोचक का यह दायित्व होता है कि वह यह देखे कि इन तमाम वर्षों में कौन-कौन-सी रचनाएं जीवित रही हैं और क्यों रही हैं. हर पीढ़ी से कुछ ही अच्छी रचनाएं छंटकर हमारे सामने आती हैं, किंतु दूसरी जो अच्छी रचनाएं कहीं दबी-ढंकी रह जाती हैं उन्हें भी सामने लाना आलोचक का ही दायित्व है. □

● प्रस्तुति : सुरेंद्र तिवारी

● छाया : पवन महेंद्र

किस्से खोजा नसीरुद्दीन के

एक-सा सलूक

एक बड़े बुजुर्ग तकरीर कर रहे थे. लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे. मुल्ला नसरुद्दीन भी मौजूद थे. बुजुर्ग कह रहे थे—"हमें चाहिए, हम सबके साथ एक-सा सलूक करें. और जो हमारे पास हो उसको सब में बराबर बांट दें..."

"लेकिन इससे काम नहीं चलता!" किसी ने टोका.

"मेहरबानी करके एक बार इस उसूल को आजमाकर तो देखिए".

"मैं आजमा कर देख चुका हूं." अब की मुल्ला चिल्लाकर बोले, "मैंने अपने गधे और अपनी बीवी के साथ सदा एक-सा सलूक किया है!"

"बहुत अच्छे!" बुजुर्ग ने खुश होकर पूछा, "जरा इन बिरादरान को भी बताओ कि तुम्हारे एक-सा सलूक करने का क्या नतीजा निकला?"

"यही कि गधा सुधर गया, बीवी बिगड़ गयी!" मुल्ला ने खड़े होकर फरमाया. □

संदेश

एक बार मुल्ला नसरुद्दीन चंदा मांगने एक अमीर आदमी की हवेली पर पहुंचे और दरबान से बोले, "अंदर जाकर अपने मालिक से कहो कि मुल्ला नसरुद्दीन चंदा मांगने आये हैं."

दरबान फौरन भीतर गया और थोड़ी देर बाद बाहर आकर बोला, "मालिक यहां नहीं हैं, बाहर गये हैं."

"तब उन्हें मेरा यह संदेश दे देना," मुल्ला ने सदर दरवाजे के ऊपरवाली खिड़की की तरफ देखते हुए कहा, "हालांकि उन्होंने चंदे में एक फूटी कौड़ी भी नहीं दी है फिर भी एक नेक सलाह उनके लिए छोड़े जाता हूं. उन्हें कह देना कि आगे जब से कभी बाहर जायें तो मेहरबानी करके अपना सिर खिड़की में न छोड़ जाया करें, किसी दिन कोई चोर-उचक्का चुरा ले जायेगा!" □

प्रस्तुति : लक्ष्मी चंद्र गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

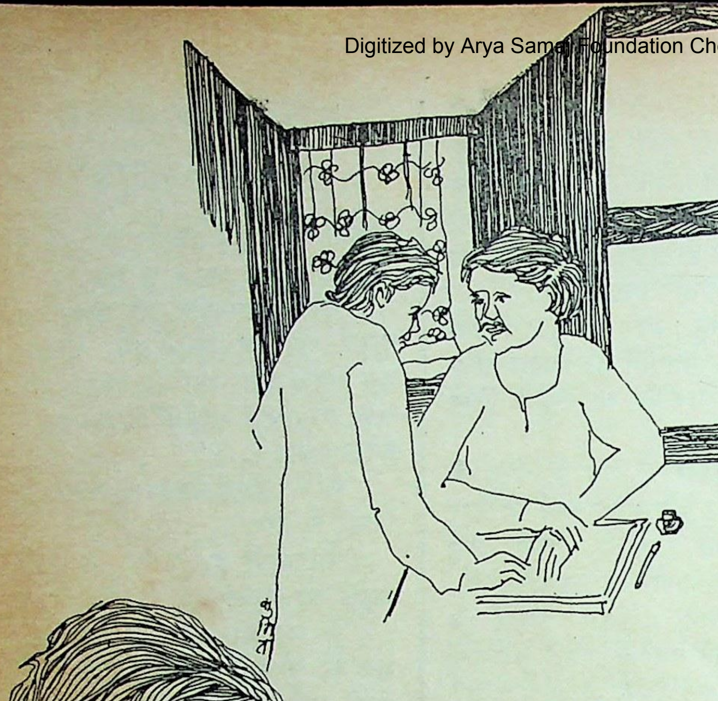

जिस सरकारी कर्मचारी के रिटायर होने में सिर्फ तीन वर्ष रह गये हों, जिसका परिवार किसी शहर में सेटिल हो गया हो, जिसके किसी ईमानदारी-भरे काम से कुपित होकर उसके उच्च अधिकारी उसका तबादला अंडमान-निकोबार द्वीप समूह के लिए कर दें तो... प्रशासनिक भ्रष्टाचार का खुलासा करती विचारोत्तेजक कथा--

तबादला

गोपाल शेखरन

मुझे अपने परम मित्र बीरबल सिंह की याद लगभग पांच वर्ष के बाद आयी. इसका कारण यह था कि कुछ दिन पहले दफ्तर वालों ने मेरा तबादला अंडमान-निकोबार में कर दिया था. पचपन वर्ष की आयु में यह तबादला किसी मापदंड से उचित और न्याय-संगत नहीं था. फिर इतनी दूर इस प्रकार से तबादला साधारण रूप से तभी होता है, जब किसी ने कोई बहुत गलत और गैर-कानूनी काम किया हो. पर सच मानिए, मेरा तबादला इसलिए हुआ, क्योंकि मैंने एक ऐसा काम करने से इन्कार कर दिया, जिससे सरकार को लाखों रुपयों की हानि होती थी. एक उच्च अधिकारी वह काम मुझसे कराना चाहता था, उस उच्च अधिकारी ने यह बात अपने मन में रखी और अवसर मिलते ही उसने मुझे इतनी बड़ी सजा दिलवा दी--काला-पानी की सजा.

तबादले के बाद मैं तिलमिलाया, रोया-पीटा, शोर मचाया, पर किसी ने मेरी नहीं सुनी. मैंने अपने तबादले का वास्तविक कारण चीख-चिल्लाकर बताया, पर मेरा किसी ने विश्वास नहीं किया. कुछ ने तो चुटकी लेते हुए मजाक बनाया, "आगे से ध्यान रखना, किसी उच्चाधिकारी को नाराज न करना. अगर तुम गलत काम कर देते तो तुम्हें कमीशन भी मिल जाती और तुम्हें कोई हाथ नहीं लगाता. यह इनाम मिला है, तुम्हें गलत काम न करने का."

मैंने निवेदन किया, मैं तीन वर्ष में रिटायर होने वाला हूं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे बाल बच्चे यहां शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, यहां मेरा अपना मकान है, मेरी पत्नी बीमार रहती है, मैं रक्तचाप का मरीज हूं—मैं पोर्ट-ब्लेयर नहीं जा सकता, पर किसी ने मेरी नहीं सुनी. मेरे एक सहकर्मी का तबादला पटना हो गया था—पर वह एक सप्ताह में ही रद्द कर दिया गया. उसने एक ऊंची सिफारिश लगायी थी.

इस तबादले के कारण मैं इतना दुःखी और परेशान था कि मैं त्यागपत्र तक देने की सोचने लगा. मुझे दफ्तर वालों ने यह परामर्श दिया कि अगर मैं पोर्टब्लेयर नहीं जा सकता तो स्वेच्छा से रिटायर हो सकता हूं. तभी एक दिन मुझे बीरबल की याद आयी. मैंने सुना कि बीरबल मेरा काम चुटकियों में करा सकता है. बीरबल मेरा पुराना मित्र और सहपाठी था. एक समय था कि जब हममें घनिष्ठता थी.

बीरबल को मिलने उसके दफ्तर में मैं ही जाता था. इसका कारण यह था कि बीरबल का दफ्तर मेरे घर के रास्ते में था और बीरबल देर तक दफ्तर लगाता था. छुट्टी होते ही मैं बीरबल के दफ्तर की ओर खिंचा जाता था. वहीं हमारी महफिल जमती थी. हमने कभी मिलकर बीयर नहीं पी, कभी पिक्चर नहीं देखी, कभी किसी प्रकार की आवारागर्दी नहीं की. फिर भी हमारी मित्रता अटूट थी.

उस समय बीरबल अपनी कंपनी का मैनेजर था. वह अपने अधीन कर्मचारियों के साथ कठोरता का व्यवहार करता था. कर्मचारियों के हाव-भावों से मुझे लगता था कि सभी कर्मचारी बीरबल को नापसंद करते थे. बीरबल किसी कर्मचारी को बोलने का अवसर नहीं देता था. उसका विश्वास था कि 'आतंक' द्वारा ही कर्मचारियों पर शासन कर सकते हैं.

बीरबल का एक उपमैनेजर था—जिसका नाम राजकुमार था. राजकुमार मुझे शक्ल से ही धूर्त लगता था. वह बीरबल से बहुत डरता था और 'हुजूर-हुजूर' कहते थकता नहीं था. वह बीरबल के सामने ठीक प्रकार से बोल भी नहीं सकता था. वह गलतियां भी बहुत करता था और इसीलिए बीरबल की डांट-डपट सहता रहता था. वह बीरबल की डांट भी सहता और 'मुझे खेद है, मुझे खेद है' भी कहता रहता था. उसकी इस 'सहनशीलता' के कारण ही बीरबल उसे बहुत पसंद करता था.

पिछले पांच वर्षों में बीरबल की मान प्रतिष्ठा, ख्याति और लोकप्रियता बहुत बढ़ी थी. वह उस समय शिखर पर पहुंच गयी, जब उसके लड़के का विवाह एक राज्य के राज्यपाल की लड़की से हो गया. उसकी जान-पहचान का दायरा बहुत बढ़ गया और उसकी पहुंच बहुत ऊपर हो गयी. वह अब बड़े-बड़े व्यापारियों, पूंजीपतियों और अधिकारियों के काम कराने लगा था. वह बड़े-बड़े काम अपने लड़के के ससुर का नाम लेकर ही करा देता था. उसने कई बड़े-बड़े काम टेलीफोन पर ही करवा दिये थे. पांच वर्ष पहले उसे एक सार्वजनिक संस्थान का 'अध्यक्ष' भी बना दिया गया था. उसका दफ्तर भी अब दक्षिण दिल्ली चला गया था.

इस नयी पदवी के बाद बीरबल मुझसे दूर हो गया. हमारा मिलना-जुलना बंद हो गया. मैं एक बार उससे मिलने गया भी. मुझे उससे मिलने के लिए चिट भेजनी पड़ी और आधा घंटा प्रतीक्षा करनी पड़ी. फिर भी बीरबल मुझसे एकांत में न मिल सका. स्पष्ट था कि पहले जैसी बात नहीं थी. मैं बीरबल से अंतरंग बात भी न कर सका. मुझे ऐसा लगा कि बीरबल के उच्चतम स्तर के कारण हमारी दोस्ती में दरार पड़ गयी है. राजकुमार, जिसे वह अपने साथ एक बड़ा अधिकारी बनाकर लाया था—बीरबल के साथ चिपका बैठा रहा. बीरबल ने मुझे कॉफी भी पिलायी. उस काफी में भी पहले जैसी आत्मीयता नहीं थी. इसलिए मुझे ऐसा लगा कि वह काफी बीरबल ने न पिलाकर, उसके चपरासी ने पिलायी हो. काफी पीने के बाद जब मैंने चलने को कहा तो बीरबल ने तनिक भी बैठने की जिद नहीं की. उधर राजकुमार ने कुछ टेढ़ी दृष्टि से मुंह बिगाड़कर मेरी ओर देखा.

अब क्या मुझमें इतनी समझ नहीं थी. कोई मूर्ख भी उनके भावों में छिपी इच्छा को समझ सकता था. मुझे यह भी लगा कि बीरबल भी मन हीमन कह रहा हो, क्यों मेरा समय नष्ट कर रहे हो, जाओ, फिर कभी आना.

मुझे न जाने क्या हुआ. मैं एकाएक निराशा और ग्लानि से भरे हुए मन से उठा और बिना अभिवादन किये बाहर निकल आया. बाहर निकलकर मुझे ऐसा लगा जैसे मैं कोई दुःखांत फिल्म देखकर सिनेमा-हाल से बाहर निकला हूं.

उसके बाद मैं बीरबल से मिलने कभी नहीं गया. केवल एक बार मैंने टेलीफोन किया तो मालूम हुआ कि वह योरोप गया हुआ है. उसके बाद मैंने कभी टेलीफोन भी नहीं किया.

पर आज मुझे बीरबल की याद आनी स्वाभाविक थी. मैं इतनी बड़ी मुसीबत में फंसा था. आज की मुसीबत में मुझे केवल बीरबल ही संरक्षण दे सकता था. मुझे अपने काम के लिए उसके पास जाना चाहिए.

मुझे कइयों ने कहा भी—बीरबल सिंह तो एक तोप है. उसका इशारा ही काफी है. उसके लिए यह इतना सरल काम है, जितना कार चलाना अथवा हार्न बजाना.

मैंने टेलीफोन डायरेक्टरी देखी. बीरबल सिंह का नंबर मुझे शीघ्र ही मिल गया. तुरंत ही मैंने टेलीफोन मिला दिया. उधर से एक रोबीली आवाज आयी, जो बीरबल की नहीं थी. फिर भी मैंने पूछा, "क्या मैं बीरबल सिंह से बात कर सकता हूं."

उधर से एक कठोर आवाज आयी, "यह नंबर उनका नहीं है, उनका टेलीफोन नंबर बदल गया है."

मैंने पूछा, "क्या आप उनका नया नंबर बता सकेंगे."

"क्यों नहीं—नोट कीजिए—उनका नया नंबर है—चार, एक, तीन, पांच, दो, छः."

मैंने तत्काल नंबर नोट कर लिया और वह नंबर मिला दिया. उधर से आवाज आयी, "हैलो, श्मशान घाट, बोलिए."

मैं क्या बोलता, पर उधर से वही आवाज, "श्मशान घाट—बोलिए . . ."

मैं क्या बोलता. राम-राम करते-करते मैंने टेलीफोन पटक दिया—यह क्या बकवास है. मिलाओ दवा-खाना, मिल जाता है बूचड़खाना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे हाथ दोबारा टेलीफोन मिलाते कांप रहे थे. टेलीफोन शीघ्र ही मिल गया. वही आवाज, "हैलो, श्मशान घाट, हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं."

मैंने नंबर बताया और पूछा कि क्या वे उसी नंबर से बोल रहे हैं?

"जी हां, यही नंबर है श्मशान घाट का, सेवा बताइए."

मैं क्या सेवा बताता. मैं समझ गया कि मेरे साथ मजाक हुआ है, पर फिर सोचा—शायद मैंने बीरबल का नया नंबर नोट करने में गलती की है. इसलिए मैंने पुनः बीरबल का पुराना नंबर मिलाया. पर नहीं मिला. इसके बाद जिस पर मैं बात करना चाहता था, वह मृतप्राय हो गया. उसमें जान ही नहीं थी. मेरा टेलीफोन मिलाना बेकार गया. मेरा हृदय धक-धक कर रहा था.

मुझे चैन नहीं मिल रहा था. मैं तत्काल दूसरे टेलीफोन पर गया और बीरबल का पुराना नंबर मिलाया. फिर मैंने कठोरता से पूछा, 'अभी मैंने कुछ देर पहले टेलीफोन किया था और आपने बीरबल का नया नंबर बताया था, पर वह तो श्मशान घाट का टेलीफोन है.'

उधर से पहेले से भी कठोर आवाज आयी, "ठीक तो बताया था, बीरबल का नया नंबर वही है, उनका तबादला ऊपर हो चुका है, समझे."

उसने 'समझे' इस प्रकार कहा, जैसे उसने मुझ पर बम फेंक दिया हो. मैंने कांपती आवाज में पूछा, "क्या मैं जान सकता हूं, आप कौन बोल रहे हैं?"

"मैं राजकुमार हूं, व्यर्थ में मेरा समय नष्ट न करें."

मैंने बहुत धीरे-धीरे और शांति-शांति कहते हुए टेलीफोन रख दिया. फिर मेरा माथा एकाएक जैसे किसी धक्के के कारण टेलीफोन के रिसीवर पर टिक गया. लगभग दो मिनट तक मैं वैसे ही पड़ा रहा. जब मैंने सिर उठाया तो मुझे खयाल आया कि मेरे साथ कितना क्रूर और भद्दा मजाक हुआ है. एक तो मेरा तबादला, जबरदस्त प्रशासनिक मजाक और यह दूसरा नैतिक मजाक था, जो मेरी सहनशक्ति से परे था. मैंने वहां बैठे कुछ लोगों के सामने प्रशासन और राजकुमार को भद्दी-भद्दी गालियां देनी आरंभ कर दीं. कुछ लोगों ने अवश्य समझ लिया होगा कि मैं पागल हो गया हूं, पर मेरे अंदर से कचरा-कूड़ा अपने आप निकल रहा था. मेरी स्थिति दयनीय और हास्यास्पद बनती जा रही थी. मेरे अंदर एक खलबली-सी मची थी. मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. श्मशान घाट का शब्द मेरे कानों में पटाखे की तरह बज रहा था. मेरी आंखों के सामने अर्थी में आग लगी थी और लपटें निकल रही थीं. एक क्षण मुझे ऐसा लगा कि आग मुझे ही लगी है और लपटें मेरी अर्थी से ही निकल रही हैं.

मैं एक कुरसी पर लुढ़क गया. मेरे कानों में टेलीफोन का वह भद्दा मजाक गूंजता रहा. एक क्षण मुझे ऐसा लगा कि मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया हूं. मैं जिस प्रकार प्रलाप कर रहा था—उससे कोई भी मुझे विक्षिप्त व्यक्ति समझ सकता था. मैंने फिर आंखें बंद कर लीं और अपनी संकल्प-शक्ति से अपने अंदर उठते प्रलाप को शांत करने की कोशिश की. पर मैं अपना ध्यान उस मजाक से हटा नहीं पाया. मेरे दिमाग में रह रहकर टेलीफोन के वे शब्द चोट कर रहे थे. मैं फिर सोच में पड़ गया—क्या कोमलता और सहृदयता मर चुकी है. क्या मनुष्य का सम्मान केवल सत्ता, पदवी और परस्पर उपयोगिता तक ही है. एक परलोक की भावना कुरुचिपूर्ण अशिष्टता से बची थी, पर अब उसका भी मजाक उड़ाया जा रहा है.इस भद्दे मजाक के बारे में सोचते-सोचते मैं अपने बारे में सोचने लगा—अगर बीरबल जैसे बड़े आदमी की मरने के बाद यह इज्जत है तो मैं किस खेत की मूली हूं.

इस प्रकार सोचते-सोचते मैं इस निश्चय तक पहुंच गया कि वह मजाक मेरे साथ भी हुआ है. सारा दिन इस प्रकार के विचार मुझ पर चोट और कचोट कर रहे थे. फिर एकाएक मैं अपने तबादले के बारे में सोचने लगा. मैं क्यों अंडमान नहीं जाना चाहता. इस स्थान पर मुझे अपमान, विकृति और बेइज्जती के अतिरिक्त क्या मिल रहा है. जहां कृतज्ञता और कृतघ्नता का मूल्य बराबर हो चुका हो— वहां रहने से क्या लाभ? मैं यहां क्यों रहना चाहता हूं?—मैं बार-बार अपने आपसे केवल यही प्रश्न पूछने लगा—मैं क्यों अपना तबादला रुकवाना चाहता हूं. इस स्थान में क्या खूबी है. न यहां आंतरिक सौंदर्य रह गया है, न सौंदर्य-भावना. कितना बदसूरत है यहां का वातावरण और यहां के लोग अंदर से कितने कुरूप हो चुके हैं. मेरा जो यहां से तबादला हुआ है, ठीक ही हुआ है. अंडमान तो क्या, अब अगर मेरा तबादला ऊपर भी हो जाये तो मैं वहां भी जाने को तैयार हूं. □

● 102 गुप्ता कालोनी, दिल्ली-110009

ग़ज़ल

समझा तो था कि उम्र भर को ही चला गया,
गम दूसरे दिन फिर सलीब ले के आ गया.

पत्थर से आदमी के हैं रिश्ते बड़े अजीब,
ठोकर किसी ने मारी कोई जल चढ़ा गया.

आया तो ऐसा आया भरी बाढ़ की तरह,
लौटा तो ऐसा लौटा कि नदियां सुखा गया.

पढ़ने में मदद देने को आया था उजाला,
लेकिन मेरी किताब के पन्ने जला गया.

आकाश ने भी उनको जगह दी नहीं ऐ दोस्त,
जिन पंछियों के घोंसले तूफां गिरा गया.

भूकंप उसको नाम दिया लोगों ने डर कर,
उनकी जमीन जो भी हिला कर चला गया.

कल एक सितारा उगा आकाश में नया,
कल एक जजीरे को समंदर पचा गया.

▣ सत्यपाल सक्सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिसंबर इकत्तीस

ओडिया कहानी

दुर्गामाधव मिश्र

विपिन बाबू डायरी निकालकर आज का विवरण लिखने लगे. भोजन के बाद रात को वे बैठकर डायरी लिखते हैं. अगर रात अधिक हो जाती है तो दूसरे दिन सुबह लिखने को विवश हो जाते हैं. डायरी के दो विभाग हैं. पहला अंग्रेजी में—जिसमें सरकारी कामकाज का विवरण रहता है. दूसरा ओडिया में—वैयक्तिक कार्यों का विवरण. उनकी यह आदत बहुत पुरानी है. साल पूरा हो जाने पर वे सारी डायरी संभालकर रख देते हैं. बीच-बीच में उनको पलटकर देखते हैं और अतीत के साथ हाथ मिलाते हैं. एक क्षण के लिए अतीत की सारी अनुभूतियों को खींच

लाते हैं आंखों के सामने. कभी तो सुख से विभोर हो उठते हैं, और कभी दुःख के आंसुओं को छलछलाती पलकों से पोंछ लेते हैं.

डायरी के प्रथम पृष्ठ को पलट देने पर उसमें प्लास्टिक का एक पाकिट है. उसमें पत्नी करवी, बड़े लड़के नवीन, छोटे लड़के नूतन और लड़की सुमित्रा के फोटोग्राफ करीने से सजे हुए हैं ऐसे कि डायरी को पलटते उन्हीं पर नजर पड़ती है, चाहे पल भर के लिए ही, उन सबको एक नजर देख लेने के बाद, संतोष की हंसी हंसकर वे डायरी लिखने में लग जाते हैं.

आज दिसंबर की 31 तारीख है. डायरी का पहला पन्ना पलटकर देर तक तस्वीरों पर दृष्टि गड़ाये रहे विपिन बाबू. अभी तक नयी डायरी नहीं आयी है. मिल जाने पर ये तस्वीरें उसमें चली जायेंगी. ये सब जरा गंदी-सी हो रही हैं. इसलिए फिर से एक बार फोटो खींचकर उसमें रखने का निश्चय मन ही मन कर लिया विपिन बाबू ने.

उन्होंने एक बार और तस्वीर को निरखकर देखा, यह करवी है—कितना सूखा-सा चेहरा है. होंठों की दोनों रेखाएं नीचे की ओर लटकने लगी हैं जैसे ऊब मन का साक्ष्य वहन कर रही है. हंसी तो जैसे बरफ में बदल गयी है. कैमरे ने ठीक ही उसे पड़ लिया है. माथे पर अनगिनत शिकनें, गाल धंसने लगे हैं. सिर पर मांग के पास दो-चार सफेद बाल. यही वह करवी है जिसने विपिन बाबू के मन में एक दिन लाल करवी का भ्रम पैदा किया था. पच्चीस साल पहले वह करवी उनके क्षितिज पर उदित हुई थी. मन-आकाश में अनेक बादल, अंधड़ और तूफानों को पार कर वह आज अपराह्न की करुण वैष्टनी में बंध गयी है. विपिन बाबू के जीवन में क्रांति और दीप्ति का विकिरण करते-करते आज वह श्रांत-क्लांत हो गयी है. अपने को जलाकर उसी प्रकाश में विपिन बाबू की कांटोंभरी राह को आलोकित करती चली आ रही है.

समय तो गतिमान है, उसे रोके रखना तो संभव नहीं, हां उसके साथ चलकर उसका सदुपयोग जरूर किया जा सकता है... और प्रायः हम ऐसा करते भी हैं... फिर भी जब कभी हम अपने विगत पर नजर डालते हैं तो पूरी संतुष्टि हाथ लगती है या निराशा...?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपिन बाबू ने लंबी सांस ली. अनमने होकर उन होठों पर एक चुंबन अंकित किया. फिर चौंक उठे. किसी ने देख लिया हो. छिः छिः चारों ओर सतर्क दृष्टि से देखा. नहीं, किवाड़ तो भीतर से ही बंद है. दुतल्ले का कमरा, खिड़की से भी किसी के द्वारा देख लिये जाने का भी खतरा नहीं है.

क्यों कोई विपिन बाबू के इस वर्जित क्षेत्र में ताकने की कोशिश करेगा? उनकी यहां कोई हस्ती नहीं है. वे तो बस एक छात्र ही हैं. पच्चीस साल पहले पढ़ाई छोड़ देने के बाद अब फिर से उनको छात्र बनना पड़ा है. वह एक हफ्ते से यहां आये हैं किसी विषय पर अध्ययन करने.

उनका अपना कार्यालय होता तो एक क्षण भी खाली नहीं रहता. एक कर्मचारी फाइल लेकर खड़ा हो तो दस-बारह बाहर खिड़की के पास जमा रहते हैं. एक गया तो दूसरा आ गया. सभी की समस्याओं का हल निकालने का दायित्व विपिन बाबू के कंधे पर है. बीच में जरा रुककर एक प्याला चाय मांगकर पी रहे हों तो भी परदे के पीछे कोई न कोई खड़ा होगा. उसका पैर, जूता या चप्पल विपिन बाबू को दिख रहा होगा. जल्दी से चाय गटककर एक अपराधी की भांति उसको बुला लेंगे.

"आओ हरिशंकर, बोलो, तुम्हारी क्या समस्या है?"

"कुछ नहीं सर, आज तनख्वाह के बिलों पर दस्तखत नहीं होंगे तो तनख्वाह मिलने में देर हो जायेगी. इसलिए ..." कहते हुए सर खुजलाने लगेंगे हरिशंकर बाबू. विपिन बाबू एक-एक करके हर बिल पर कम से कम दस दस्तखत करेंगे.

"सर, कल कितने बजे दौरे पर निकलेंगे?" थूक निगलते हुए हरिशंकर बाबू पूछेंगे.

"क्यों क्या जरूरत है?"

"कुछ जरूरी फाइलें थीं, सर."

फिर आयेंगे गदाधर बाबू, निशिकांत बाबू और दूसरे बाबू लोग.

दौरे पर जाने से भी छुटकारा नहीं मिलता. जिस शहर में घुसेंगे उस शहर की सीमा से ही पायलट रास्ता काटते हुए और रास्ता दिखाते हुए उनको ले जायेगा. जहां ठहरेंगे वहां भी सशस्त्र प्रहरी खड़े होंगे. आने-जाने में कोरनीस. वहां के आफिस के लोग हाजिर रहेंगे. उनकी भी अनेक समस्याएं होंगी.

"डकैती बढ़ रही है, सर, थाने में इतने कम लोग हैं कि पहरा देना संभव नहीं होता. कब से प्रस्ताव भेजा है कि कुछ लोग और दीजिए. अभी तक कोई हुक्म नहीं मिला सर."

विपिन बाबू समझाएंगे, "देखो बनर्जी, सरकार के पास इतना रुपया कहां है? अगर सारा खर्च इस तरफ होगा तो देश की योजनाएं कैसे चलेंगी. उन्हीं लोगों से काम चलाओ. जरा अधिक परिश्रम करो. देख लेना, सब ठीक हो जायेगा."

बनर्जी भी अखिल भारतीय स्तर का कुशल आफीसर है. वह विपिन बाबू की विवशता समझ जायेगा लेकिन फिर भी एक असफल कोशिश और करेगा, "नहीं चलता सर. रबड़ कितना खिंचेगा? एक निश्चित लंबाई तक ही तो जायेगा? फिर तो टूट जायेगा. अब वही हालत है."

विपिन बाबू जानते हैं, बनर्जी जो कुछ कह रहा है, उसमें जरा भी झूठ नहीं है. वे खुद भी नौकरी शुरू करते समय ऐसे ही कहा करते थे. जब देखा कि श्रोता-वक्ता कोई नहीं है तो चुप रहना सीखा, दार्शनिक की भांति मन को समझाया——ईश्वर की इच्छा ही पूर्ण हो.

विपिन बाबू दूसरी तरफ बात को खींच लेंगे. रात के नौ या दस बजे भोजन परोसा जायेगा. खाना खाकर अपने कमरे में घुसते समय शरीर और मन शिथिल हो जाता है. किसी तरह डायरी लिख ली और सो गये. सुबह निकलकर काम करना पड़ेगा.

वह झंझट भी अब एक हफ्ते से नहीं है. यहां तो वे एक छात्र हैं. विभिन्न राज्यों से उनके जैसे पदाधिकारी यहां आये हैं. दस से पांच तक बराबर पढ़ाई चलती है.

फिर भी न जाने क्यों विपिन बाबू के मन से जंजाल छूटता नहीं. आज सुबह के एक अंग्रेजी अखबार में देखा, उनके अंचल में मुख्यमंत्री दौरे पर गये थे. वे तो यहीं बैठे हैं, जनता ने उनका घेराव किया, पत्थरबाजी की. कलक्टर और एस. पी. जख्मी हुए. आंसू गैस छोड़ी गयी. लाठी चली. स्थिति पर काबू पा लिया गया. पर मुख्यमंत्री की गाड़ी के पहिये से हवा निकल गयी. क्योंकि लोगों ने जानबूझकर लोहे के कांटे बिखेर दिये थे. मुख्यमंत्री दूसरी गाड़ी से लौटे. एक और खबर भी है. उनके अंचल के एक सब-इंस्पेक्टर की किसी ने हत्या कर दी है. विपिन बाबू चिंतित हुए. डायरी लिखना बंद करके फिर से उन्होंने दोनों समाचारों को पढ़ा. मन के भीतर किसी नस पर जैसे चोट लगी. वे वहां नहीं हैं, इतनी सारी घटनाएं हो गयीं. लगा कि अपराधी वही हैं. वे न तो इन घटनाओं के स्रोत में अपने को बहाकर दूसरों के दुःख में भागीदार बन सके, और न दूसरों को कोई दिशा-निर्देश ही दे सके. इसीलिए मन में ग्लानि होने लगी. इच्छा हुई कि कल सुबह के हवाई जहाज से वे अपने राज्य में लौट जायेंगे. सारा दायित्व अपने माथे पर ले लेंगे, सबको दिलासा देंगे.

लेकिन क्यों? वे कौन होते हैं? उनका अंचल कैसे हो गया? वे तो एक सरकारी कर्मचारी हैं. उनका अपना तो कुछ नहीं है. ये तीन बच्चे हैं, उन्हीं के लिए अपनी सारी कमाई लगाकर वे तो ईश्वर के भरोसे जी रहे हैं. वे लोग कैसे बड़े होंगे, बड़े आदमी बनेंगे, अच्छी तरह पढ़ेंगे-लिखेंगे. इसी-लिए ज्यादा खर्च करके दूर विदेशों में उनकी पढ़ाई की व्यवस्था की है. जो वे खुद नहीं कर पाये, अपने बच्चों के लिए उसकी पूर्ति करना चाहते हैं. नवीन ने एम. ए. किया, नूतन बी. एस. सी. कर रहा है. सुमित्रा बी. ए. में भर्ती हुई है. जितना संबल लेकर वे संसार-संगम में उतरे थे, उसमें कभी वृद्धि नहीं हुई, बल्कि वह घटता ही गया है. लेकिन उनको परवाह नहीं है. तो फिर इस समाचार को पढ़कर उन्हें चिंतित क्यों होना चाहिए.

फिर भी मन को नहीं समझा पा रहे हैं. शायद यह आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

की एक सहज प्रवृत्ति है. जितना शास्त्र, पुराण पढ़ो, इस प्रवृत्ति से मुक्ति नहीं मिल पाती. भगवान बुद्ध ने कहा है—'कामना के नाश में दुःख का विनाश होता है.'—'का तव कांता कस्ते पुत्र:.' फिर भी हरेक गृहस्थ इसी मायाजाल में फंसकर छटपटा रहा है.

विपिन बाबू ने लंबी सांस ली. तस्वीरों पर उंगलियां चलाकर कल्पित मलिनता को दूर हटा दिया और डायरी के पन्ने पलटकर लिखने बैठ गये. आज महीने का और साल का भी अंतिम दिन है. कल से नया साल नये उत्साह से आना चाहिए.

इसी प्रकार कितने नये साल आये हैं? दूसरे दिन बूढ़े होकर निकल भी गये हैं जैसे नयी डायरी का चकमक प्लास्टिक आवरण मलिन पड़ जाता है.

दरवाजे पर दस्तक सुनाई पड़ी. रात को नौ बजे कौन किवाड़ खटखटा रहा है!

रात के पजामे पर गाऊन चढ़ाकर किवाड़ खोले विपिन बाबू ने.

"आपको परेशान कर रहा हूं सर, माफ कीजिएगा."

"कोई बात नहीं, बोलिए."

दूसरी तरफ के कमरे का रहनेवाला आंध्रप्रदेश का एक कलक्टर है. विपिन बाबू के साथ तालीम ले रहा है.

"आइये, अंदर आइये."

"जरा देर के लिए कलम चाहिए. डायरी लिख रहा था, कलम से स्याही खत्म हो गयी."

"यह लीजिए," कहते हुए विपिन बाबू ने हंसकर अपनी कलम उनको दे दी.

"धन्यवाद सर." कहकर वह चला गया.

विपिन बाबू ने तो डायरी लिखना शुरू भी नहीं किया है. मना न कर सके. मना भी कैसे करते?

किवाड़ बंद करने के बाद वे फिर मेज के पास बैठ गये. आंखों के सामने अंधेरा-सा छा गया. नींद नहीं आ रही है. अखबार का हर कोना तो पढ़ चुके हैं.

फिर डायरी को पलटने लगे. आंखों के सामने हैं वही चार तस्वीरें. उनको ताकते हुए बिना शंका या संकोच के एक-एक चुंबन अंकित करते चले गये.

दिसंबर इकत्तीस की डायरी नहीं लिखी जा सकी. अक्षत और अनाघ्रात रह गयी यह तारीख. डायरी के सफेद पन्ने पर स्याही की एक बूंद भी नहीं लगी.

छाती के पास डायरी रखकर उन्होंने स्विच बंद कर दिया. सारा कमरा अंधकार से भर गया.

जब तक रोशनी आती, दिसंबर इकत्तीस का 'अवसान' हो चुका था. □

▣ अनुवाद : राधा कांत मिश्र

मुफ्त ! मुफ्त !! मुफ्त !!!

हमारी कंपनी ने पूरे हिंदुस्तान में बहुत नाम कमाया है. पांच साल गारंटी का माल पहले पहल हमने ही बनाया है. पंद्रह साल की कोशिश और तजुर्बे के बाद हमने यह माल बनाया है. हिंदुस्तान की तमाम कंपनियों में हमारी कंपनी एकदम बडी है. हमारी कंपनी के समस्त जेवरों की सूची तथा उनके मूल्य आप घर बैठे ही मुफ्त मंगा सकते हैं. हमारे बहुमूल्य केटलाग को देखकर आप अपनी मनपसंद चीज सिर्फ नंबर लिखकर वी.पी.पी. द्वारा मंगा सकते हैं.

MERI GOLD COVERING WORKS

14, RANGANATHAN STREET, T. NAGAR, POST BOX No. 1405, MADRAS-600 017

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रवक़म रैट

नफीस आफरीदी

खर्रर- खर्रर-खर्र-किर्रर-किर्रर-किर्र खटरिया साइकिल. जंग खाये फ्रेम में चेन अड़ती है तो अड़ती ही चली जाती है. साइकिल का बेसुरा संगीत सुग्गा के दिमाग की सोयी हुई नसों में कुरेद मचाने लगता है, जैसे बित्ते भर का कनखजूरा अपनी सैंकड़ों नुकीली टांगों से खरोंच रहा हो. सुग्गा के भीतर आग भर जाती है और वह राम रतन की सात पुश्तों को मन-ही-मन कोस-पीटकर हांफने लगता है.

वह त्रस्त है. साइकिल से भी और राम रतन के ठगुआपन से भी. परकी साल एक भेड़ बेच गया. चिकनी-चुपड़ी खायी-पी देह पर ऊन के गुच्छे, ऊपर से गाभिन. सुग्गा ने सोचा ब्यावेगी तो दो होंगी, लेकिन लोथ का लोथ फेंककर आप भी चल बसी. बहुत रोया-झींका, पर पैसा-धेला वापस नहीं हुआ. राम रतन ने दो गवाह खड़े कर उसी पर गाली पड़वायी, "जात दिखाता है सारे! रतना ने माल बेका. तैंने माल लिया. हमारे अगाड़ी लेन-देन हुई. भाग यां से हरामी!"

सुग्गा अपनी करनी पर हैरान है. साइकिल वाले सौदे में धता खा गया, फिर क्यों ली भेड़? उस पर जाड़े-पाले में ओढ़ने के लिए दसूती और ले बैठा. गल-फटकर अलग हुई. एक जाड़ा भी नहीं झेला. उल्लू का पट्ठा है सुग्गा? आदमी की नीयत की पहचान कर भी ठगुओं के फेर में पड़ता है.

"राम-राम कक्का! काम पे जायते हो?" रज्जू था. हाथ में डिब्बा लिये खेत की मेड़ से उठा और नीम की खोखल में डिब्बा टिकाकर धोती की लांघ बांधते हुए सड़क की तरफ आया. झटके से उधर देखा. जरा सी बेध्यानी से हैंडिल बहक गया. रोड़े-पत्थर से बचाने के उपक्रम में खुदड़ी हुई सड़क के गड्ढे में जा पड़ा. साइकिल एक तरफ औंध गयी. लत्ता-गमच्छा सब कीच में सन गया. रज्जू खबर-खबर जांघ खुजाते हुए हंसने लगा.

सुग्गा को भिनसारे की टोक-टाक भली नहीं लगती. तिलमिलाकर कीच पोंछते हुए उसे घूरा. रज्जू पास खड़ा ठठिया रहा था.

"तन्नक रोटी की पोटली तो देख. सही-सालिम है या आज की दुफैर फिर अंतड़ियों की गुहार सुननी पड़ेगी. कल ससुरा रोटी टुकड़ा नहीं मिला. चौतरी पर पोटली धर हाथ मूं धोने गया. पीछे से खजैली कुत्ती ने हल्ला बोल दिया."

सुग्गा ने साइकिल गढ़े से निकाल स्टैंड पर खड़ी कर दी और भुनभुनाता रहा.

रज्जू ने सूखे से पोटली उठाकर केरियर में खोंस दी और गर्दन खुजाते हुए बोला, "कक्का, आज ठाली हूं. मेरे को भी काम पे ले चलो."

"तेरे बस की है. गांजा-पुलका चढ़ाके ईंट-गारा ढोयेगा! तू ठहरा अंफड़ी. ठीकेदार से भिड़ गया तो समझो मेरी भी गयी. मेरे को छिमाकर भैया!" सुग्गा ने साइकिल संभालते हुए कहा.

वह नहीं चाहता, बिल्कुल भी नहीं. ऐसे आदमी के कौल-फैल का भरोसा नहीं. जब चाही खायी. जब जी में आया उगल दी. कच्चे सौभाव का आदमी. सुसरे से बहुरिया नहीं संभलती. आपे को क्या संभालेगा? आप ठाली है तो क्या? औरत बारो मासी कमेरी है. नरान दास के खेतों की लस्टम-पस्टम नफरी. मीरपुर के राधा मंदिर की देवी जैसी देह. कालो नद्दी की सुडौल चट्टान. खूब पछीट-पछीट के कपड़े धोओ. निखरती ही चली जायेगी. अलमस्त मस्तानी चाल. सोनबन की हिरनी जैसी कुलांचें. चलती है तो बांके जवानों की छाती दरकती है और फिर खिल-खिल हंसी, सिऊ संकर संगीत इस्कूल में बजने वाले जलतरंग सरीखी. असल खरा हीरा है रत्ती. नरान दास जोहड़ में थोड़े ही फैंकेगा. जानता है, रज्जू की नीयत और गांजे चरस की लत. कारिंदे भेज शहर से मंगवाता है. खूब-असील और झकझक. सेवन करो तो सात लोक का ठेंठर देखो. एक बार उसके साथ बैठ गया था, जुल्मी ऐसी चढ़ी कि दो दिन मदद पर नहीं गया. ठीकेदार ने गुलगपाड़ा मचा दिया. राज-मिस्त्री नहीं तो दीवार कैसे उठे.

सुग्गा ने साइकिल दौड़ा दी. रुकता तो पीछे लद लेता रज्जू. दो-दो को ढोना बस का नहीं. वैसे ही अंजर-पंजर ढीले हैं. आधे-पूरे मास में ठोक कराई के ढेर पैसे भरता है, फिर भी दांत-दाढ़ की तरह चीसती रहती है. भली उठायी बैरन. पूरे दो सौ पांच में खटराग पाल लिया.

हुश-हुश हुश. . .टिअ-टिट-टिट. . .

भेड़ बकरियों का रेवड़. लाथिया हांक रहा था. बीच सडक पर रैल-पैल. सुग्गा साइकिल दनदनाता हुआ एकदम पीछे. रेवड़ फटता चला गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाथिया भी अजब है. इतने सवेरे घर-घर से भेड़ बकरियां हांक लाता है और पौ फटने के थोड़ी देर में ही जंगल में घुस जाता है हरखू ग्वाले की तरह आलस नहीं तोड़ता. गांठ का पूरा और काम का धनी. जंगल से ऐसा लगाव कि मीरां जोगन भी मात. दिन भर के तप की देह लिये सांझ-सकारे टेकरी पर लौटता है वह भैरों मंदिर में विश्राम धियान के वास्ते. लेकिन नाथिया को तो जैसे जंगल का रोग लग गया है. गोधूलि के बहुत बाद दिया-बाती पीछे लौटता है. भेड़-बकरियों के टटाटट पेट भरे होते हैं.

सुग्गा भी क्या कम है? मदद-मजूरी पे आध-पौन घंटा पहले पहुंचता है. बीच में रोटी पेट में डालने के सिवा कुछ नहीं. न कमर सीधी करेगा, न एकाध झपकी लेगा. कुल्ला पानी कर सीधे छत मुंडेरों पर और शुरू कन्नी-फटके की ठुक-ठुक. ईंट-पर-ईंट चढ़ती जायेगी. खाने की छुट्टी में बेलदार की नानुकर सुन आप ही गारा-मसाला ढो लायेगा. पांच की जगह छह और उसके भी सात बजा देगा.

कभी कोई बेलदार भुनभुना उठता, "मिस्तरी! औरों का भी तनिक ध्यान करे. रस्ते में चोर-उच्चके लगते हैं."

"अबे, मेरे को देख. चार कोस पे गाम. बीच में काली नद्दी का पाट. उस पे पंदू डकैत का खौफ." सुग्गा बीड़ी कान में खोंस कन्नी फटफटाता रहता.

"तुम्हारी तो डकैतों से यार-बासी ठैरी. तुम्हारा क्या? रात-बिरात कभियों जाओ." दूसरा बेलदार तसला पटक देता, फिर तीसरा और उसके बाद चौथा. सभी तसले पटक टंकी की तरफ बढ़ लेते हैं.

सुग्गा तसले पटकने का मतलब समझ जाता और बांस की नसैनी पर पैर जमाकर नीचे उतर कर झींकता, "लो, सुसरो, जो जी में आये करो."

ठेकेदार मालिक कहते हैं, "ऐसा राज-मिस्त्री नहीं देखा, पक्का हुनरमंद! न मुंह फाड़े, न हुज्जत हाय-हाय करे. एकाध रुपया कम दे दो तो भी भरपूर सलाम. एक दफे की चाय और माचिस बंडल की मांग भी नहीं. साथी लोग बहुत चिढ़ते हैं. धंधा बिगाड़ रहा है. रकम-रेट तय करो तो सुग्गा उदाहरण बन जाता है. हर बात पर उसका भूत खड़ा करते हैं. मेट-मुंशी तक घुड़की देकर कहता, "मेरी मत मारी गयी जो तुझे लगाया. पखवाड़े बाद सुग्गा भूरामल के यहां से फारिग होकर आप ही चला आता. सच्ची गंगासरन, तेरे में इत्ती भी सरम-हया नईं के दो-चार मिन्ट ज्यास्ती मदद लगा देवे."

दिन में ऐसी न जाने कितनी फटकारें बेलदार-मिस्त्री सुनते हैं और भीतर-ही-भीतर उफनते हुए सुग्गा को कोसते हैं. कभी-कभी गालियां मुंह आगे भी पड़ जाती हैं, पर वह हंसता रहता है. उसकी हंसी में ताजगी होती है. गाढ़ा पसीना बहाता है. कोई चोरी चकारी का धंधा नहीं करता, फिर किस बात की शर्म! वह अपने ढंग का अकेला है. उसके चलने पर कोई चले न चले, वह अपने तरीके को सही समझता है. किसको समझाये कि बारहों मासी रोजगार का हिस्सा हिल्ला लगाये रखने के लिए कितना कुछ खोना पड़ता है.

रेल फाटक आ गया. बंद पड़ा था. मालगाड़ी का समय है. निकल जायेगी, तब खुलेगा. उसने फुर्ती ने साइकिल कंधे पर उठायी और दोनों फाटकों के ऊपर उतारता हुआ भीमनगर की सड़क पर आ गया. गेटवान चिल्लाता-गालियां बकता रहा, पर सुग्गा एक मिनट भी खोटी क्यों करे?

क्रेशर के सामने आकर उसने साइकिल खड़ी कर दी.

ईमानदारी, लगन और मेहनत किस आदमी को सबका प्रिय नहीं बना देती, पर आजादी के बाद पनपी दोगली संस्कृति ने आज इसे भी पूरी तरह विकृत कर दिया है, लेकिन गंगी भी सुग्गा के उन मूल्यों को क्यों और कैसे भूल गयी? मानवीय मूल्यों की सशक्त कथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्याऊ पर पानी पिया और एक बीड़ी जलायी. सड़क के किनारे किनारे बैलगाड़ियां थीं. टटाटट गन्नों से लदी हुई. अबकी साल गन्ना खूब हुआ है. कम हो तो गुड़-चीनी महंगी. नहीं तो किसान पे बिपदा.

बड़े मजे की बात. एकाध बीघा के मालिक को भी लोग चौधरी कहकर सलाम ठोकते हैं. सुग्गा के पास कुल जमा दो बीघे थी. उस पर भी आधी-ऊध परती. छोटा खेत और बरसाती नदी एक समान. जितने समय भरी रहे, उससे दुगुनी रीती. साल भर का नाज भी नहीं उठता था. ऊपर से इल्लत अलग. गंगी के ब्याह में बेचकर हाथ झाड़ लिये. रह गया राजगीरी का आसरा. चौमासे में भी ठीली नहीं बैठता. कुछ नहीं तो घर-भीतर की मरम्मत ही मिल जाती है. सुसरे सबके सब मुंह ताकते हैं, पर सुग्गा घंटी टनटनाता भिनसारे ही काम पर तैनात. जलते हैं सब. फुटी आंख में मिर्चा भरी रहती है. अरे, जस पाओ, दाम कमाओ. सुग्गा के काम पर मरते हैं बाबू लोग.

बुंदू के खोखे से पंप उठाकर वह साइकिल के अगले पहिये में हवा भरने लगा. सहसा गंगी ध्यान में कांटे-सी गड़ गयी. हाथ-पांव फूल गये, जैसे हवा पहिये में नहीं उसके भीतर भर गयी हो. स्वयं को दबोचना जानता है. संयत करने में देर नहीं लगती. वह फुर्ती से साइकिल की काठी पर जा बैठा और पैर पैडिल पर.

बुंदू पाना-पिलास छोड़कर चिल्लाने लगा, "ओ सुग्गा! पहिये में हवा भर लेई और चल दिया. बोनी-बट्टा कुछ नई. चल, निकाल दस्सी."

बुंदू को दस्सी पकड़ा आगे निकल आया. हवा पानी के भी दाम लगने लगे. वह झुंझला उठता है. मशीन पर पानी बिकता है और सड़क किनारे हवा. उसे अचरज होता है कि हवा-पानी का धंधा बड़े लोग क्यों नहीं करते? ठगुवे राम रतन से ही एक बार पूछा था. खिल-खिल हंसता हुआ बोला था, "पानी फोकट में आवे है! नदी से भर लाओ और अड्डे पर दस्सी-पंजी में धड़ाधड़ बेचते जाओ."

गंगी का आदमी मोटर अड्डे पर पानी बेचते-बेचते माल-पत्ती वाला हो गया . अब दूध की डेरी करता है. उसकी चीज रकम पर मर मिटा सुग्गा. हाथ पीकर गंगी को बैठा दिया डोली में.

हैंडिल पर कसे हाथ सहसा कांप गये. साइकिल लहराने लगी. फुर्ती से उतर गया और पैदल चलने लगा. माथे पर पसीना चुहचुहा आया. गमछे से पोंछते हुए सोचा—आज जी इत्ता परेशान क्यों है? बेर-बेर दिल क्यों बैठने लगता है.

शायद करमा के कारण. फत्तापुर के नोलख धीमर ने बताया था. बीहड़ में पुलिस की डकैतों से मुठभेड़ हुई. जो बच गये, वे पकड़े गये. उनमें एक करमा भी था. करमा डकैत था. गंगी का धनी करमा. पानी और दूध बेचने वाला करमा.

इस बार उसे लगा, हाथ-पांव पिचक गये हैं, जैसे भीतर की सारी हवा खींच ली गयी हो. पेड़ के तने से साइकिल टिका उकडूं बैठ गया. घुटनों की हड्डियां चरमरा गयीं. दिमाग में भैराहट-सी भरती जा रही थी और आंखों में बेबसी ने अपने पंजे गाड़ दिये थे.

गंजी ने उसका बहुत साथ दिया. वेहिचक कमेरी और कड़ियत काठी. तीसरे-चौथे तल्ले तक माथे पर तसला धरे ऐसे चढ़ेगी जैसे बंदरिया का खेल. सुग्गा की आंखों में एक-एक कर कई इमारतें उठ आयीं. रामा टाकीज, भैरों मंदिर, हरचंद जूनियर हाई स्कूल, कालका कोल्ड स्टोरेज और छावनी वालों की कोठी. आखिरी बार इसी कोठी में आयी थी गंगी. बान बैठने पर ही हटी मेहनत मजूरी से. इसी सड़क के किनारे-किनारे न जाने कितनी इमारतें उसके हाथों खड़ी हुई थीं. एक से एक मजबूत और बुलंद. रेता-मिट्टी में गंगी ने भी अपना पसीना मिलाया था. बचपन बीते काम पे लगी तो ब्याह पीछे ही गयी और अब यह करमा. . .! किसे पता था कि डकैत निकलेगा.

बल्ब फैक्ट्री का सायरन बजते ही चौंक पड़ा. तेजी से उठकर साइकिल थाम ली और उचककर काठी पर जम गया. साइकिल दौड़ रही थी और हवा के थपेड़े उसके जोर को घटा रहे थे. बायें किनारे माधोराम की धर्मशाला है. गंगी पहली बार यहां आयी थी. तभी जस फैल गया था. ऐसा हाथ किसी राज-मिस्त्री का नहीं लगा. भीत-खंभे सब मुंह से बतियाते हैं. बाहर का आदमी गुजरता है तो ठगा-सा खड़ा रह जाता है. फिर पूछ-पड़ताल शुरू. सुग्गा को ढोकर ले जाते

लघुकथा

स्वर्ग-नर्क

▣ जिम बिशप

बूढ़ा पादरी मौत के बिस्तर पर पड़ा था. एक मौके पर वह उठकर बैठ गया और परलोक में अपनी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने लगा. तभी उसे स्वर्ग और नरक का खयाल बेचैन करने लगा. आखिर वे कैसे होंगे? वह जीवन भर लोगों को उनके बारे में बताता रहा था, लेकिन उस समय उनकी असलियत के बारे में उलझन में पड़ गया था.

कुछ ही देर में कमरे के मद्धिम-से अंधेरे में उसने अपने सामने दो व्यक्तियों को खड़े देखा. वह उन्हें झट पहचान गया. ऊंचा-लंबा व्यक्ति मोसेस था और दूसरा व्यक्ति पीटर. फिर, जब उन्होंने उसे अपने साथ चलने का संकेत किया तो वह उनके पीछे चल दिया. देखते-देखते वह धरती पर से उठने लगा और तारों भरे आसमान में पहुंच गया. वह और भी ऊपर उठता गया. आखिर एक बहुत बड़ा भवन आने पर मोसेस और पीटर उसके सामने रुक गये.

"स्वर्ग में बहुत से भवन है," पीटर ने कहा, "और नरक में भी हैं, अंदर चलो, नरक का एक भवन दिखायें."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादरी ने कमरे में कदम रखा ही था कि उसके कानों में बहुत-सी शिकायत भरी आवाजों का शोर पड़ा और उसने देखा. एक बड़ी मेज के गिर्द बहुत-से लोग बैठे हुए थे और मेज के बीच में एक बहुत बड़ा बर्तन मांस के शोरबे से भरा पड़ा था, जो कि पादरी का मनपसंद भोजन था. उन लोगों के पास यद्यपि चमचे थे, जिनसे कि वे शोरबा ले सकते थे, लेकिन वे सभी भूखे थे. वास्तव में वे चमचे उनके हाथों से बंधे हुए थे और उनके हैंडल इतने ज्यादा लंबे थे कि शोरबे तक तो पहुंच सकते थे, लेकिन होंठों को नहीं छू सकते थे. सो, लोग भूख के मारे शोर मचा रहे थे.

पादरी के कान फटने लगे तो उसने बाहर निकलने की प्रार्थना की.

पीटर और मोसेस उसे लेकर वहां से दूर एक और इलाके में एक भवन के सामने जाकर रुके. वह स्वर्ग था और जब पादरी उस भवन के पहले कमरे में दाखिल हुआ तो उसने वहां भी वही दृश्य देखा. एक बड़ी मेज के गिर्द बहुत-से लोग बैठे हुए थे और मेज के बीच में शोरबे से भरा बहुत बड़ा बर्तन रखा हुआ था. लोगों के हाथ के साथ बंधे हुए चमचे भी बहुत लंबे थे, लेकिन कोई भी व्यक्ति भूख की शिकायत नहीं कर रहा था और हर किसी के चेहरे पर तृप्ति थी. वे सब एक दूसरे को खिला रहे थे. □

प्रस्तुति : सुखबीर

वाले भी बहुत मिले; पर उसकी अपनी सीमाएं हैं. तहसील की चौहद्दी के भीतर का मनमौजी कमेरा. लौट-फेर कर बस इतनी सी भाग-दौड़.

सब कुछ ठीक-ठाक सही और सालिम. कहीं कोई खटक, कोई जोखों नहीं; पर आज सुग्गा सहज नहीं है. नोलख धीमर झूठा गपोड़ नहीं. खरा आदमी खरी बात. कल ही तो बता रहा था, "तेरी भेनिया का भाग फूट गया सुग्गा. करमा डकैत निकला. माल-असबाब सब उठा ले गयी पुलिस. रीते फेर में गंगी बौरायी-सी डोले है."

सारे जनम का जस धूल-मट्टी हो गया जैसे अंगनाई में. नोलख धीमर को देखता रह गया. आंखों में चकमक की चिंगारियां लिये, जो बाहर कूदने के बजाय भीतर ही भीतर छटपटाकर ठंडी हो रही थीं. ठंडी और भारी हवा फेफड़ों में फंसी थी, जो मोटे नथुनों के रास्ते कूदकर भैराये बटोही की तरह डोलने लगी थी. अपनी देहरी के बाहर अब सुग्गा की हस्ती नहीं बचेगी. सब उसे कुट्टी काटने की मशीन समझेंगे. जब जी में आया, चक्का घुमाकर कट-खट-कट-खट कुट्टी का ढेर. बाकी समय न तेल, न पौंचा. कब तक चलेगी मशीन. साइकिल की तरह एक और खटराग पाल बैठा. उसे रामरतन और करमा एक जैसे लगे.

"हरामी करमा." किनारे थूककर बड़बड़ाया वह और जोर-जोर से पैडिल मारने लगा. आज वह नागा कर देगा और जाकर गंगी की खैरखबर लायेगा. अब रुक नहीं सकता. चार कोस पर ही तो है. इत्ता-वित्ता साथ तो साइकिल दे ही देगी. एक बार पहिये की हवा और टाइट करा ले. खुड़दड़ गडार पर अंचर-पंचर की बला भी टल जायेगी.

चौपटिया का चौक. दूकान खोखे सब बंद. थलों पर मजूर-कमेरे बेतरतीब पसरे हैं. बीड़ी-चिलम, सुरती-फंकी और बात चुहल की भिनभिनाहट. काले अधनंगे जिस्मों की टोलियां. सुग्गा को इस नदिया में डूबना नहीं पड़ता. लोग बुलवा भेजते हैं. वह बेहिचक चल देता है. पेट बांधकर चाली पर टंगा दिन-दिन भर पसीने में लथपथ. गंगी थी तो फिकर करती थी. उसे और उसके सामान को बहुत सहेजा है. गुटका-गुनिया, साहुल-गुरमाल से लेकर हथोड़े-बसूले तक की सार संभाल. वह जानती थी कि कारीगर को हाथ चढ़ा औजार ही सुहाता है. बरमा मिस्त्री और बेलदार में क्या अंतर. एक बार गुरमाल चोरी हो गया. गंगी ने बेलदारों की जान सांसत में डाल दी. बहुत हेकड़ छोकरी थी. निकलवाकर छोड़ा. फिर तो महेसर पर फटका लेकर ऐसी पिली कि केड़ी हाय-तौबा. मेट-मुंशी बचाने आये तो उन पर भी फटके की फटकार.

गंगी ने खबर नहीं भेजी. नादान छोकरी. तनिक नहीं सोचा कि सुग्गा अभी मरा नहीं. साथ छूट गया तो क्या याद भी छूट गयी!

चौक से पहले ही वह साइकिल से उतर गया. क्यों चला आया इधर? सब देखकर चौंकेंगे. घर से सीधा काम पर पहुंचने वाला आज इधर कैसे. गोल-गोल आंखें घुमाकर हैरानी से पूछेंगे, "काम की कमी पड़ गयी क्या?" उसने सोचा, लौट पड़े और सीधा ग्राम-सोटावाली की तरफ चल दे. कचहरी के पास खटखटिया में हवा भर लेगा और फिर गंगी के गांव की तरफ दौड़ जायेगा.

धूलिया ने उसे देख लिया. लपकता हुआ चला आया, "इधर आके रेट बिगाड़ोगे कक्का! भोत लुकसान कराते हो. यां आने की किन्ने बोला."

"अरे नईं, मैं तो वैसे ही आ गया. मन में आयी के चुन्नी हलवाई की आध सेर जलेबी बांध लूं. गंगी बड़े चाव से खावे है." सुग्गा हंसने लगा. हंसी के पीछे जो छिपाना चाहा रहा था, वह माथे की लकीरों से छलक रहा था, पर धूलिया इतना चौकस नहीं. उसे क्या पता, उस पर क्या बीत रही है? उसे तो फकत रकम-रेट की पड़ी है.

बात चिबराने के ढंग में ही बोला सुग्गा, "पन धूलिया, तेरे को रेट-वेट की क्या? बीस की पर्ची पे अंगूठा टेक पंद्रह अंटी में बांधता है. उप्पर से मेट-मुंशी की गाली-गलौच पर घेंट फाड़ता है."

झक-झक फटफटिया पर जुम्मा ठेकेदार बीच चौक में आकर रुका. जात का धुनिया पर ठस्सा सेठ मूलचंद जैसा. रेजा-कमेरियों से चुहल करते हुए उसने किसी जागीरदार की तरह चारों तरफ देखा. सब उसकी ओर लपकना चाहते हैं. कचहरी बनवा रहा है. लंबा काम है. एक बार लग गये तो महीनों की छुट्टी, पर जुम्मा नाप-जोख में बहुत चुस्त है. चुन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनकर चिकनी-सुडौल औरतें छांटेगा. उन पर एक मिस्त्री और भारी उठा पटक के लिये दो-चार बेलदार. गारा सानने पर रेजाएं ही तैनात करवाता है. मोढ़ा डालकर सामने बैठ जायेगा और नंगी टांगों पर आंखों के कंचे पटकता रहेगा.

उसने इशारे से पिरभू को बुलाया. गमछा कंधे पर डाल खीसें निपोरता वह फटफटिया के पास आ गया और हाथ जोड़ दिये. जुम्मा उसकी तरफ झुककर धीरे-से फुसफुसाया, "बिज्जू लोहिया के थले पर कौन बैठी है. वो भोली के पिछाड़ी?"

"सुखिया चमारी है सरकार! छज्जू टोले की. मुरिया मोची बिरपस्त को गौना करके लाया है." पिरभू हुलककर बताने लगा.

"साली फटी पड़ रई है. उठा ले सुसरी को. और देख, मेहता ठेकेदार का कारिंदा घूम रिया है. सोना धीमरी को ले जायेगा. तू उससे पेले तोड़ ले. रूपा-धेला ज्यास्ती दे देऊंगा. मैं डाक बंगले होके आता हूं. तब तक सब ठीक कर लीजो. बड़े साब का दौरा है सुसरे. माल चौखा होवे." जुम्मा ने फटफटिया स्टार्ट कर दी और दनदनाता हुआ चला गया.

जुम्मा की सूरत देख फफोले-सा पक उठता है सुग्गा. गंगी को देखते ही आंखें चीचड़ी की तरह चिपट देता था. छुड़ाओ तो छूटे नहीं. दूसरे की आंख पर किसका बस. रैयत में जो ठहरे. रईस-उमराव होते तो बिटोरे निकलवाकर चील-कौवों को दे देते. गंगी सोना धीमरी नहीं थी, जिसके घर ठेकेदार-मुंशी डेरा डाल ताड़ी तमाखू उड़ाते हैं और लौटते बखत खातिर-जमा रखते हैं. मेहनत करे इत्ती और पावे इत्ता कि घर पक्का करवा लिया. ढोर-डंगर पाल लिये. गंगी को चाहवे था चमडैल. सुग्गा ने सोच को झटका दिया और चुन्नी हलवाई की भट्टी के सामने आ खड़ा हुआ.

"आध सेर तोल दे लाला." उसने गला खकारकर कहा.

"अरे सुग्गा, भौत दिन में देखा भई. गंगी क्या गयी, तूने तो इधर का रास्ता ही छोड़ दिया." लाला ने झारे से जलेबियां उतारकर थाल में रखते हुए कहा.

"गंगी के गांम जारा हूं." सुग्गा के मन में उठा कि लाला से उसकी लड़की के बारे में पूछे. गंगी के पीछे ही ब्याह हुआ था. एक ही गांव का एक ही पड़ोस, मेल-जोल तो रहता ही है.

उसे लगा, लाला को मालूम नहीं है. तब अच्छा ही है. क्यों फालतू में छेड़कर सांग करावे. एक निमट में चौपटिया गूंज उठेगी. चारों तरफ एक ही आवाज बिखर जायेगी, करमा डकैत, करमा डकैत. उसने घबराकर इधर-उधर देखा. सब बिकने की तैयारी में है. सौदा पटाई की हील-हुज्जत. हेकड़ लोगों की गाली गुफ्तार. उसे तसल्ली हुई कि कोई उसकी मौजूदगी से विचलित नहीं है. शायद सब समझ गये कि सुग्गा रेट बिगाड़ने नहीं आया है. एकबारगी उसके जी में आया, चीख-चीखकर सबको सुनाये, "सुसरो, आओ, देखो, सुग्गा का रेट बिगड़ गया. अब उसे कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछेगा." पर हुंकार गले में ही अटककर रह गयी.

जलेबी गमछे में बांधते हुए वह पलटा और हैंडिल पर टंगे झोले में रखने लगा.

"सुग्गा, तनिक पारबती को भी जलेबी पहुंचा देना. ले, सेर भर तोल दी है, उसकी अम्मा की तरफ से राजी-खुशी बोल देना." लाला कह रहा था और सुग्गा सुन रहा था. झुंझला गया वह. राजी-खुशी का बख्त है. यह पिरान मुंह को आये पड़े हैं और लाला को अपनी पड़ी है. सुसरी, सारी जलेबी जोहड़ में फेंक दूंगा. उसके भीतर आग-सी उग रही थी, एक उफान था, जो बाहर आना चाहता था, पर किससे कहे वह अपने दुख को कथा.

कुछ सोचकर सुग्गा ने भीतर के उबाल को ठंडा किया और लाला से खलता ले यूं ही हंसते हुए बोला, "सब तरफ राजी-खुशी है लाला, ईसुर को किरपा है."

साइकिल दौड़ाता हुआ वह चौपटिया से काफी दूर निकल आया. अभी थोड़ी देर पहले पानी पीकर गला तर किया था, लेकिन फिर कांटे से उगने लगे. ठंडी बयार बह रही थी, फिर भी कोई राहत नहीं. पसीना चुहचुहाने लगा था. दस-दस कोस साइकिल दौड़ाने वाला सुग्गा मिनट-मिनट पर हांफ रहा था. क्या हो गया है उसे?

सड़क की सीध में आंखें गड़ी थीं. उसे लगा—जैसे गंगी के साथ मिलकर बनायी इमारतें ढह गयी हैं और चारों तरफ मलबे का भारी ढेर लग गया है. वह उस ढेर पर बेतहाशा

बिहार की लोककथा

ठोरा बाबा

▣ प्रियरंजन

सतयुग में एक ठोरा बाबा थे. बिक्रमगंज अनुमंडल के पास नोनहर गांव में ठोरा बाबा का गांव था. माता-पिता का देहांत हो चुका था. उनकी आर्थिक स्थिति काफी खराब थी. उस गांव में उनकी परवरिश करनेवाला कोई दूसरा नहीं था. वे दाने-दाने को मोहताज थे. उनका ननिहाल नोनहर गांव में था, जहां उनके सात मामा थे. ननिहाल में ही रहकर शेष जीवन गुजारने का इरादा कर ठोरा बाबा नोनहर चले आये. नाना-नानी का देहांत हो चुका था. बच गये थे सात मामा, जो अलग-अलग रहते थे. नोनहर पहुंचने पर उन्हें अपने मामा-मामियों का प्यार शुरू में काफी मिला. वे किसी दिन एक मामा के यहां रहते तो किसी दिन दूसरे मामा के यहां. यही सिलसिला बहुत दिनों तक चला और उनका समय कटता रहा, लेकिन कुछ दिनों के बाद उनकी कठिनाइयां आरंभ हो गयीं.

उनके सातों मामा-मामी सोचते कि आज ठोरा बाबा किसी दूसरे भाई के यहां रहेंगे और खायेंगे. और ऐसा सोचकर वे ठोरा बाबा का खाना नहीं बनाते. जब दिन-भर घूमने-घुमाने के बाद ठोरा बाबा उनके यहां शाम को पहुंचते तो मामियां कहतीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हमनीं के सोचलीं जा कि राउर खाना उनकरा इहां बनल होई. इहे सोच के हमनीं के राउर खाना ना बनईलीं इंजा. अब त चूलहा भी बुता गहल बा.'

ठोरा बाबा कुछ बोल नहीं पाते और वहां से फिर अपने किसी दूसरे मामा के यहां चले जाते. अगर खाना मिल जाता तो खा लेते, वरना उपवास.

कुछ दिनों के बाद ऐसा हुआ कि ठोरा बाबा का प्रत्येक मामा यही सोचता कि ठोरा बाबा का खाना दूसरे भाई के यहां बना हुआ है. नतीजा यह हुआ कि ठोरा बाबा को सात मामाओं के दरवाजे से निराश होकर लौटना पड़ता और भूखे रात गुजारनी पड़ती.

इसके बाद ठोरा बाबा के उपवास का सिलसिला शुरू हुआ. वे लगातार कई दिनों तक भूखे रह गये. जब भूख की आग बर्दाश्त नहीं हुई तो दुःख और आत्म-ग्लानि की भावना से पीड़ित होकर वे गांव के कुएं में आत्महत्या करने के लिए कूद पड़े, किंतु पातालपुरी ने उनकी आत्महत्या को स्वीकार नहीं किया. पानी का खौलता हुआ फव्वारा कुंए से ऊपर उठा और ठोरा बाबा उसके साथ बाहर आ गये, लेकिन नोनहर गांव में एक पल रुकना वे नहीं चाहते थे. आत्म-ग्लानि, दुःख और क्रोध की भावना से वे जल रहे थे. उन्हें विश्वास नहीं था कि उनके सात मामा उनके साथ ऐसा नीच व्यवहार करेंगे. इसलिए वे नोनहर गांव से वेग से निकल पड़े और उनके पीछे पीछे नदी की धारा चल रही थी.

उसी गांव में एक नट था, जिसके साथ ठोरा बाबा की दोस्ती थी. वह उसका शिष्य भी था. जब उसे मालूम हुआ कि ठोरा बाबा गांव से निकल पड़े हैं तो वह भी उनके पीछे-पीछे चला.

लोगों का कहना है ठोरा बाबा वेग से चले जा रहे थे. वे ड्योढ़ी, बमनौल, यमसोना गांव से होते हुए सिरोल गांव के पास कात्र नदी से मिल गये और फिर वे वहां से चले बक्सर की ओर पहुंचकर गंगा नदी को चीरते हुए उस पार जाना चाहते थे. उनसे वेग से गंगा नदी घबरा उठी और प्रकट होकर उसने रुकने का अनुरोध किया. गंगाजी के मनाने पर वे बीच धारा में रुक गये.

तभी से नोनहर गांव से निकलकर बक्सर तक जानेवाली इस नदी को ठोरा बाबा कहते हैं और जहां-जहां इस छोटी नदी की निकली हुई छोटी धाराओं के बारे में लोग कहते हैं कि ये धाराएं वास्तव में उनका शिष्य नट है, जो आज भी ठोरा बाबा को ढूंढ़ रहा है.

मकर संक्रांति और अन्य अवसरों पर इस छोटी नदी में लोक स्नान कर ठोरा बाबा का आशीर्वाद लेने आज भी जाते हैं. ड्योढ़ी गांव में एक आयरूपी शिवजी मंदिर है जिसके पास ही ठोरा बाबा का अंतः स्रोत बहता रहता है जहां लोग स्नान, ध्यान और पूजा करते हैं. ऐसे कई अंतः स्रोत और जगह पर भी हैं. बरसात के दिनों में यह छोटी नदी पानी से लबालब भर जाती है. गर्मी के दिनों में पानी का स्तर कम हो जाता है. एक पतली धार अंतःस्रोतों से निकलती रहती है और लोग जब भी इस धार को पार करते हैं तो ठोरा बाबा की जय आज भी बोलते हैं. □

साइकिल दौड़ा रहा है. फ्रेम से रगड़ खाती चैन की आवाज लगातार उसके कानों में कांटे भोंक रही है.

अब वह रामरतन की जगह करमा को कोस रहा था. पहली बार उसकी समझ में आया कि पानी बेचने वाला इतनी जल्दी कैसे डेयरी का मालिक बन मनों दूध बेचने लगा. गंगी तो जान गयी होगी. मास-दो-मास में भेद बदली-सा फट गया होगा, पर बताया नहीं दारी रांड ने. जी में तो आवे कि जाके झौंटा रगड़ दे, पर ब्याह तो उसी ने करवाया था. खुद ही ललचा गया था. फटफटिया पे चढ़के आता है, उंगलियों में तीन-तीन अंगूठियां और गले में सोने की चैन. धीमर है तो क्या, लगे है कुंवर-ठाकुर सरीखा. करमा ने गंगी को मांगा, तो दौड़ के किया रिश्ता. कौन जाने ऊंचा माल कब बिक जाये. सुग्गा को घड़ी भर सब्र नहीं हुआ.

पहले डाक बंगला, फिर तहसील, उसके बाद कचहरी! मुंशी अंबा प्रसाद के बस्ते पर थोड़ा जल पीकर आगे बढ़ेगा. सूखे गले से कांटे निकल जायेंगे. कितनी-सी दूर रह गयी कचहरी. वकील-वुकला से बात करके देख लेगा. करमा के बारे में कुछ तो होगा ही. गंगी ब्याह दी जिसके साथ उसे यूं ही छोड़ा भी तो नहीं जा सकता. जमानत-मुचलका के लिए पूछेगा. आजकल सुसरे डकैतों की जमानत में भी सौ झंझट. हाकिम लोग ऐसे पैंतरे दिखायेंगे कि अच्छे-अच्छों की घिग्घी बंध जाये.

कचहरी का गेट आ गया. खुलने का बखत दस और हाकिम हुक्काम ग्यारह-बारह. जनता राज में हाकिमों की हुकूमत. हर काम में घंटे दो एक की देर-सबेर. कुर्सी पर बैठें तो कुछ करें, अंबा प्रसाद बखत की पाबंदी जानता है. बस्ते पर बैठा मिसलें पलट रहा होगा. वकील साहब के आने तक सगला काम फिट.

सहसा जुम्मा की फटफटिया घड़घड़ाती हुई गुजरती है. झपाटे में सुग्गा संतुलन खो देता है. साइकिल औंध जाती है. पगड़ी एक तरफ और जलेबियों का झोला उछलकर कूड़े के ढेर पर.

तिलमिला कर उधर देखता है और टकरा जाता है. गंगी पिछाड़ी बैठी है, जुम्मा की बगल में हाथ दिये. फट-फट की आवाज में खिल-खिल हंसी. जुम्मा ले उड़ा. गयी काम से गंगी. रेट बिगाड़ दिया ससुरी ने.

छिले हुए घुटनों पर हाथ रख उठता है. चिरमिराहट सी होती है. कूड़े के ढेर में पड़े झोले पर काली कुतिया मुंह मार रही है, गंगी की जलेबियां अब बचने वाली नहीं. □

● 60 ब्रह्मनान स्ट्रीट, हापुड़-225101 (उत्तर प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीवी भई कोतवाल

रामसरन शर्मा

उर्दू के कवि का यह शेर सुना है आपने?

ए देखनेवालो मुझे हंस-हंस के न देखो,
तुमको भी मुहब्बत कहीं मुझ-सा न बना दे.

यदि सुना है तो मुझे देख लीजिए. और यदि नहीं सुना है तब भी मुझे देख लीजिए. आपकी समझ में सारा भेद आ जायेगा.

वास्तव में मेरी इस दशा का आरंभ बहुत पुराना है. समझ में नहीं आता कि इसकी जिम्मेदारी मंडन मिश्र की धर्म पत्नी पर है या बंकिम चंद चटर्जी पर. स्वामी दयानंद इसके जिम्मेदार हैं या महात्मा गांधी. इनमें से कोई एक-या शायद सभी मेरी इस दयनीय दशा के कारण हैं, कि अच्छे-खासे, पढ़े-लिखे, देखने-भालने में ठीक पुरुष को घर का नौकर बना दिया गया है.

यों ऐसा होना न चाहिए था. क्योंकि जो नक्शा हमने जीवन का बनाया था उसमें चैन को ही स्थान था बेचैनियों को नहीं. आराम की गुंजाइश थी, हलकान की नहीं. पर विधाता के मन कछु और है मेरे मन कछु और. या यह समझ लीजिए कि अपना भाग्य ही टेढ़ा था.

प्रत्येक युवक अपने भविष्य का प्लैन बनाता है, या उसको बनाना चाहिए, ऐसी सभी सफल लोग राय देते हैं. मैंने भी ये सम्मतियां बड़े मनोयोग से पढ़ी थीं और अपने भविष्य पर खूब विचार किया था. कारण यह था कि न तो मैं असफल ही होना चाहता था न बहुत मेहनत करना ही. साथ ही मन में एकांत अभिलाषा थी महज महान लेखक बनने की. कालिज के समय में ही होनहार बिरवान के चिकने पात दीखने लग गये थे. कालिज मैंगजीन के संपादक बने थे. दो चार पत्रों में रचनाएं भी छप गयी थीं. एक-आध पारितोषिक भी पीट लिया था. सो मन ने मान लिया कि हम जीनियस हैं. अब जीनियस हुए तो साधारण काम करना असंभव था. लिखकर ही नाम और धन कमाना था. एच. जी. वेल्स, सॉमरसेट माम, वुडहाऊस आदि के नाम तथा कमाई का कुछ पता था ही. सो नक्शा यह बनाना था कि अपने मजे में दिन रात साहित्य सरजन करें और आर्थिक प्रबंध किसी और के सर रहे.

और क्योंकि भारतमाता की दशा हमें पता थी—उसके सपूत जो ठहरे—हिंदी माता की हालत भी जानते थे... उसके वरद पुत्र थे, हमने वही नक्शा बनाया जो एक चतुर पुरुष बनाता. अर्थात, किसी कमाने योग्य धनवान कन्या को जीवन साथी बनाया जाए. आरंभ के काल में वह कमाएगी और हम कला की सेवा करेंगे. क्योंकि वह हमें अत्यंत प्रेम करती होगी. इस प्रकार कलाकार की सेवा का अवसर पाकर अपने को चिर-धन्य समझेगी. बाद में जब हम ख्याति प्राप्त कर लेंगे तब... अरे, एक नोबेल प्राइज से ही उसके जन्म भर का काम चल जाएगा. खट से रुपयों की थैली या नोटों का बंडल सामने धरकर अभय मुद्रा में मंद-मंद मुस्करा देंगे. वह निहाल हो जायेगी. प्रसन्न मुद्रा की प्रैक्टिस भगवान की मूर्ति देखकर कर लेंगे.

आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि यह प्लैन बिल्कुल सफल रहा. सुलेखा नाम की विदुषी जो बड़े सफल बैरिस्टर मिस्टर एस. कांट (श्रीकांत हिंदी में) की पुत्री थी, और जो वकालत पढ रही थी, हमारे जाल में आ गई, हम पर मर मिटी. यों उस अनुपम सुंदरी तितली के अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहनेवाले थे, उस शमा के अनगिनत परवाने थे, पर उसने किसी से भी विवाह न करके हमें पसंद किया. शायद हमारी कला, पुरुषोचित सौंदर्य का ही यह प्रताप था. सो यद्यपि मित्रों ने एक-आध बार सत्तर चूहे खाने वाली बिल्ली की बात भी कही, पर हमने समझ लिया कि जलने वाले जला करें.

हमारे कोई आगे-पीछे तो था ही नहीं. सो विवाह हो गया. बैरिस्टर साहब भी मान गए—शायद वह भी हमारे गुणों पर रीझ गए थे.

विवाह में मिली एक शानदार कोठी रहने को. सुलेखा जैसी रूपवती और धन ढेर-सा.

यह ठीक है कि सुलेखा बड़ी सोशल थी, रात-दिन मित्रों में घिरी रहती. पर हम निश्चित थे. पत्नी तो हमारी थी. फिर वकील को सोशल होना ही पड़ता है. हमारी कला के भी बड़े कद्रदान हो थे. नये मित्र जो सुलेखा की मार्फत बने बड़े तमीजदार, अफसर, रईस थे. हम भी मान्य सज्जन बन गए थे.

और उन्हीं दिनों जब हम अपनी प्लान की सफलता पर मगन थे, भाग्य को धन्य-धन्य कहते थे, एक नयी बात हुई. सुलेखा ने बताया कि वह शायद जुडीशियल अफसर बनने जा रही है. बस, सुनते ही हमारी बांछें खिल गईं. सुलेखा को गोद में उठा ही तो लिया.

उन दिनों उसका अधिक समय बाहर ही बीतता था. जोड़-तोड़ लगाने में. इधर हम भी जीवन की महानतम कृति लिखने में लगे थे—एक उपन्यास जो हमें गोर्की, सार्त्र और हेमिंग्वे से भी आगे बढ़ाने वाला था. हमें उसका बाहर रहना बिल्कुल न खला.

सुलेखा अफसर बन गई.

उस दिन शानदार पार्टी हुई जिसमें हम ही हम थे. मजलिस की जान, जलसे का ईमान थे. यों सुलेखा ही केंद्र थी, पर लोग हमारी भी प्रशंसा कर रहे थे. बधाईयां दे रहे थे. और हम मन ही मन सोच रहे थे कि कोई दिन जाता है, उपन्यास निकल लेने दो, फिर तो एक जलसे की क्या सारे देश की आंखें हम पर ही होंगी.

> "जाने किस घड़ी उनके दिमाग में यह विचार आया था कि उनमें एक महान लेखक होने के सब गुण हैं और अगर वे चारों ओर से निश्चिंत रहकर साहित्य साधना करें तो ही साहित्य का उद्धार होगा. लिहाजा उन्होंने एक पढ़ी-लिखी कमाऊ कन्या से विवाह कर लिया... कन्या से पत्नी में परिवर्तित होते ही उनकी 'वो' ने उन्हें क्या बनाया, किसका उद्धार किया... बयान कर रहे हैं स्वयं उनके 'वे'—"

गए. सो हम उसे चमकाने में लग गए.

हम लेखक बनने लगे. अर्थात पत्रों में कहानियां, लेख आदि खूब छपने लगे. दो-एक पुस्तकें भी प्रकाशकों ने ले लीं—सौदा सुलेखा ने ही किया था. प्रकाशक महोदय किसी मुकदमे के सिलसिले में बैरिस्टर साहब के पास आये थे, सो सुलेखा ने फांस लिया.

सुलेखा की आमदनी बढ़ने लगी. हमें भी दस पांच रुपये मासिक मिल ही जाता था. बात यह है कि कला में सफलता पाना धैर्य का काम है, यह सुलेखा और हम खूब जानते थे.

कहने का मतलब यह है कि हमारी पांचों उंगलियां घी में थीं और सिर कढ़ाई में. सुलेखा कोर्ट और क्लब और मुवक्किलों से बचा समय हमारे साथ ही बिताती थी. पुराने मित्र सब कट गए

पर हाय, वह दिन कभी न आया.

कारण, सुलेखा उस दिन से नयी-सी हो गई. सवेरे देर से उठना. दिन भर दफ्तर. शाम को मिलने वालों का तांता या क्लब. रात को फाइलें.

हम से भी वह कम बोलती. बोलने में हाकिम-सी लगती. ड्राइंग रूम से कहती, "डार्लिंग जरा शर्बत तो पिलवाओ. नौकर जाने कहां मर गया है."

फिर 'डार्लिंग' कहना बंद हो गया. कहती, "भई, जरा चाय तो लगवा दो." बाद में—"सुनो, शाम को कुछ लोग आयेंगे, चाय ठीक से बनवा देना. दिन भर घर पर रहते हो यही कर दिया करो. मैं क्या-क्या करूं? जो न देखूं वही चौपट."

तो यों हम घर का प्रबंध करने लगे. ड्राइंग रूम में भी जब तक वह न कहे बैठना बंद हो गया. "लोग मन की कहते तुम्हारे सामने शर्माते हैं. मेरी पोजीशन गिरती है..."

हमारे मन ने विद्रोह भी किया—कलाकार जो ठहरे. तो सुलेखा हंसकर बोली, "अरे, तो दिन भर करते क्या रहते हो? मैं कहां-कहां तक देखूं. घर हम दोनों का है. जहां पति कमाता है पत्नी घर देखती है. यहां तुम देखो. फिर काम ही कितना है? बाकी वक्त में लिखो."

हम चुप रह गये. पर कब तक?

"मेरा उपन्यास..." मैंने कहा.

सुलेखा बोली, "जाने भी दो. क्या रखा है कलम घिसने में. मेरी राय है तुम मेरे जजमेंट्स लिख दिया करो. भाषा ठीक लिखते ही हो. बस वही लिखना काफी होगा."

लीजिए, इस प्रकार हम अवैतनिक स्टेनो भी हो गये. वह बोलती जाती, हम लिखते जाते. उसके कहने से शार्ट हैंड भी सीख ली.

उपन्यास पड़ा ही रहा. कभी-कभी हम सोचने लगते हैं कि क्या हमारा प्लान सफल रहा? विद्रोही कलाकार मन कहता है कि छोड़ो यह सब. सुलेखा को भी. फिर से नया जीवन बनाओ. यहां नौकर पति बनने से तो वही अच्छा रहेगा.

पर यहां के आराम, सुख, सुलेखा का रूप... पांव में वेणी बन जाते हैं.

सैंया के कोतवाल बनने पर किसी का डर न हो, पर बीवी के बनने पर डर हो ही जाता है. सुनते हैं सुलेखा आजकल एक नये अफसर के साथ बहुत रहने लगी है, जो सुंदर भी है सफल भी... देखें ऊंट किस करवट बैठता है. कहीं . . .

चलूं, डिनर का प्रबंध देख लूं. नहीं तो आते ही बरसने लगेगी. वह जजमेंट भी तो टाइप करना है. □

● बी-बी-26-बी, जनकपुरी, नयी दिल्ली-110058

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाड़ी की

छत पर यात्रा मौत को आमंत्रण

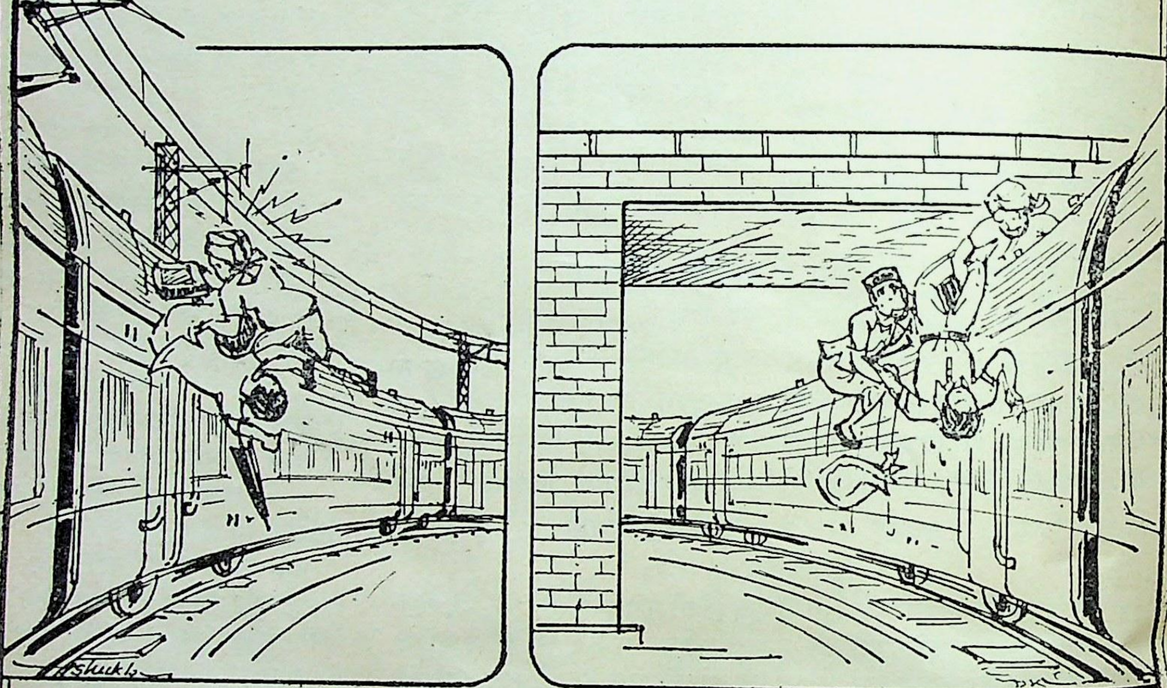

- आप अचानक झटके से गिर सकते हैं।
- ऊपरी पुल से टकरा सकते हैं।
- आपको बिजली की उच्च वोल्टेज, शिरोपरि तारों से घातक करन्ट लग सकता है।

कानून के अन्तर्गत यह दण्डनीय भी है।

मुख्य जन सम्पर्क अधिकारी

उत्तर रेलवे द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरफ्तारी

पृष्ठ 12 से जारी

मैं एस. पी. से फोन पर बता चुका था और उसने सहृदयतापूर्वक मेरी भर्त्सना करते हुए मुझे बताया था कि नीचे के स्टाफ की अशिष्टता के बावजूद मैंने मिस्त्री की मौत वाले मामले के साथ ही एक ज्यादा गंभीर मुकद्दमा अपने पर कायम करा लिया है. पर उसने भरोसा दिलाया था कि मेरे साथ कोई 'थर्ड डिग्री' वाला काम न होगा, "बस कानून अपने रास्ते पर चलेगा. वहां हम मजबूर हैं."

बारिश होने के पहले समतल मेघों से ढके आसमान और बंद हवा का माहौल था.

सात बजे के बाद मैं गर्म काफी पीकर काफी सहज महसूस कर रहा था पर अभी हर एक से बात करने की मुझमें ताब नहीं थी. बिस्तर के पास फोन रखे हुए मोटे तकिये के सहारे बैठा हुआ कुछ पत्रिकाएं पलट रहा था. अपनी गिरफ्तारी और गोली चलने-चलाने की घटना मेरी चेतना के किसी गहरे गर्त में दफन हो गयी थी. लगता था, वह कोई पुराना सपना है. वास्तव में अब मेरी चेतना पर मिस्त्री की मौत हावी होने लगी थी.

एक फर्म है जो रुपयों की सालाना फीस लेकर घरों में बिजली, पानी, प्लंबिंग आदि का रखरखाव अपने मिस्त्री भेजकर कराती है. उसी ने इस मिस्त्री को भी यहां बिजली का तार कसने के लिए भेजा था. मैंने फर्म के मालिक को फोन करके मिस्त्री का नाम पूछा. उसने जवाब दिया, "मुझे नहीं मालूम."

"उसके पास बिजली के काम की ट्रेनिंग की कोई सनद थी? कोई डिप्लोमा?"

"मुझे यह भी नहीं मालूम."

"तो आपने उसे मेरे यहां इस काम के लिए भेज कैसे दिया?"

"मैंने तो भेजा नहीं था."

मेरा मन फिर अवास्तविकता के तेज भंवर में चक्कर काटने लगा. कमरे में चारों ओर निगाह डालकर मैंने अपने को आश्वस्त किया. यह जो भी हो, सपना नहीं है. मैं टेलीफोन पर गुर्राने लगा, बोला, "वह मिस्त्री आपकी फर्म से आया था. उसके पास बिजली के काम का कोई सर्टिफिकेट न था. दरअसल वह मिस्त्री था ही नहीं, पतलून और टी-शर्ट पहनकर घूमने वाला कोई बेकार नौजवान था. उसे इस काम पर लगाकर आपने जुर्म किया है. आप पर मुकद्दमा चल सकता है."

टेलीफोन के दूसरे सिरे पर जो भी रहा हो, उस पर इसका कोई असर नहीं हुआ. उसने कहा, "मुकद्दमा तो, सुना, आप पर भी कायम हो गया है. पर इसका यह मतलब तो नहीं कि आपने जुर्म किया है." वह हंसने लगा. जाहिर था. मिस्त्री की मौत उसके लिए दीवार में लगाते वक्त एक प्लास्टिक का स्विच टूट जाने की घटना भर थी, जिसे कबाड़ में फेंककर डिब्बे से दूसरा स्विच उठा लिया गया हो. उसने फिर कहा, "देखिए साहब, हमने हर काम के लिए अलग-अलग फर्मों को ठेका दे रखा है. हमारा बिजली का काम वर्मा ब्रदर्स करते हैं, प्लंबिंग का जैक्सन वाले. उस मिस्त्री के बारे में कुछ जानना हो तो वर्मा ब्रदर्स से कुछ पूछ लें."

मैंने कहा, "जिम्मेदारी आपकी है. आप ही पता लगायें."

"मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं है. मैं किसी मिस्त्री-फिस्त्री को नहीं जानता. मेरा काम है आपके मकान के रख-रखाव में आपकी सेवा करना. वही मैं कर रहा हूं."

फोन पहले उसी ने रक्खा. अब तक हर चीज सपने की अबूझी रोशनी से ढक गयी थी. मैंने वर्मा ब्रदर्स को फोन मिलाया. उधर से अच्छी अंग्रेजी बोलने वाली एक आवाज ने हाकिमाना हिंदी में जवाब दिया. शुरुआत हमदर्दी से हुई, "हमें इस घटना पर बहुद-बहुत दुःख है."

"उस मिस्त्री का नाम क्या है?"

"हमें अफसोस है, खुद हमें नहीं मालूम. हमें तो यह भी नहीं मालूम कि वह मिस्त्री था भी या नहीं."

"ऐसा कैसे हो सकता है?"

"अजीब वक्त आ गया है साहब. पुलिस वाले उसकी लाश हम पर थोप रहे थे, पर सच पूछिए तो उस आदमी को हम जानते तक नहीं, हमारी फर्म में वह कभी नहीं था."

"तो वह मेरे यहां आ कैसे गया?"

"कह नहीं सकता. मैं खुद हैरान हूं. उसी की जांच करा रहा हूं. दरअसल सर, जब एलिगेंट होम्स वालों का फोन आपके यहां मिस्त्री भेजने के लिए आया, तब मैं था नहीं. मेरे असिस्टेंट ने एक होशियार सर्टीफाइड मिस्त्री आपके यहां भेजा, पर वह भटक गया, आपके मकान पर देर से पहुंचा. तब तक अफसोस है, यह घटना हो चुकी थी."

वह उस त्रासद मौत को दुर्घटना की भी हैसियत नहीं

ग़ज़ल

प्यास का पर्याय बनकर रह गयी है जिंदगी,
किस कदर असहाय बनकर रह गयी है जिंदगी.

घास भी जिसने न पायी हो कई दिन से हरी,
एक भूखी गाय बनकर रह गयी है जिंदगी.

सभ्यता के नाम पर क्या गांव से आये शहर,
एक प्याला चाय बनकर रह गयी है जिंदगी.

धुएं का अजगर निगलता जा रहा है बस्तियां,
धुंध, सीलन, हाय बनकर रह गयी है जिंदगी.

घुटन, उत्पीड़न, रुदन जैसे पड़ावों से गुज़र,
काफिला निरुपाय बनकर रह गयी है जिंदगी.

▣ रोहिताश्व अस्थाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहता था, घटना कह रहा था. मेरा संयम टूटने लगा.

"ऐसा भी हो सकता है कि आपके मिस्त्री ने ही अपना काम बचाने के लिए उसे भेज दिया हो."

"हो सकता है. यह संभावना मैं मानता हूं, पर हमारा मिस्त्री ऐसा करेगा नहीं."

"आपके मिस्त्री ने जुर्म किया है. उस पर मुकद्दमा चल सकता है."

"माफ कीजिएगा सर, अब आप पुलिसवालों जैसी अंधेर कर रहे हैं. सुना है, वे खुद आपको फंसाने की फिक्र में हैं."

"जो भी हो, इस मिस्त्री का पता लगाना आपकी जिम्मेदारी होगी."

"सर, हमारी जिम्मेदारी बिल्कुल नहीं है, पर मानवीय दृष्टि से मैं पता लगवा रहा हूं. मुझे मालूम है कि बहुत से बेकार नौजवान आजकल दो-चार रुपये के लिए कुछ भी कर सकते हैं. हमारे यहां ऐसे कई लोग चक्कर काटते हुए आते हैं. कौन-सी कहावत है वह आप लोगों की? बिच्छू के काटे का मंत्र नहीं जानते और सांप के बिल में हाथ देने को तैयार हैं. हो सकता है, उसने यहीं फर्म के आसपास आपके घर की जरूरत सुन ली हो और दो-चार रुपये की बख्शीश के लालच में हमारे मिस्त्री से पहले ही आपके यहां पहुंच गया हो."

"मुझे लगता है कि आपको या आपके मिस्त्री को इस मामले में पुलिस के सामने काफी जवाबदेही करनी होगी."

"उसकी आप फिक्र न करें. हमारा मिस्त्री उस आदमी के बारे में कुछ भी नहीं जानता. वह उससे कोई भी जान-पहचान होने से इनकार करता है. पुलिस उसका बयान ले चुकी है. सच तो यह है कि हमारे मिस्त्री की बात को वह आदमी ही काट सकता था, पर वह अंग्रेजी में बोला, "मुर्दे कोई भी बयान नहीं दे सकते."

मैं बहुत खिन्न हो गया. कुछ देर पलंग पर खामोश लेटा रहा, फिर वकील को अंदर बुलाकर अपनी स्थिति के बारे में बातचीत शुरू की. शुरुआत से ही मालूम हो गया, मैं गहरी मुसीबत में हूं.

लगभग नौ बजे मकान का फाटक खुलने की आहट हुई और मुझे बिना पूछे ही मालूम हो गया कि पुलिस दल-बल के साथ पहुंच रही है. इस बार बिना किसी हिचक और डर के अपने वकील और रिश्तेदारों के साथ मैं पहले ही बरामदे में निकल आया. हम लोग कुर्सियों पर बैठकर उनका इंतजार कर रहे थे.

वे राइफल लिये हुए फाटक से बरामदे की ओर आ रहे थे. उनके आगे एक अफसर था जिसके हाथ में कोई हथियार न था.

पुलिस की टुकड़ी बरामदे के नीचे खंभे की आड़ में खड़ी हो गयी. अफसर ऊपर आया. यह डिप्टी सुपरिंटेंडेंट था. मुझे उसका नाम मालूम नहीं था, पर मैं उसे शक्ल से पहचानता था. अभिवादन करके वह लगभग अनौपचारिक ढंग से हम लोगों के पास कुर्सी पर बैठ गया. उसके रंग-ढंग से जाहिर था कि इस रात किसी जंगल में मेरा एनकाउंटर दिखाकर मेरी लाश पर विजय-गर्व दिखाने के लिए वे नहीं आये हैं.

उसने कहा, "हमें अफसोस है..."

आसपास बिखरी कहानियां

वही चेहरा

▣ ए. असफल

आज तीसरा दिन था. गौरी खग्गू बाबा के नीम की सबसे ऊंची डाली पर बैठी है. बहने वाले बह गये हैं, मरने वाले मर गये हैं, पर जो पेड़ों की टहनियों पर अटके हैं, उन्हीं को बचाने का प्रयास किया जा रहा है. बचाव दल की सैनिक-असैनिक नौकाएं यत्र-तत्र फंसे लोगों को निकाल-निकालकर सुरक्षित स्थानों पर पहुंचा रही हैं, लेकिन गौरी के पास अभी तक कोई नौका नहीं पहुंच सकी है. कुछ आटे के लड्डू जो उसने झोले में भरकर कमर से बांध लिये थे, वही उसकी धरोहर हैं. शेष सब कुछ जलमग्न. सब कुछ माने सभी कुछ. गांव, घर, अपने-बेगाने.... कुछ भी तो नहीं छोड़ा उस सैलाब ने. दिन भर का थका-हारा सूरज भी जा रहा है अब तो. जीकर क्या करेगी गौरी...? क्या...? उसने सैकड़ों बार सोचा है. अब तो आंखों का पानी भी सूख चुका है. जहां तक दृष्टि जाती है––श्वेत जल के ही दर्शन होते हैं.

वह आंखें मूंद लेती है. फिर खोलती है कि अंधेरा होने से पहले एक बार फिर जी भरकर देख ले इस तबाही को... तभी रो पड़ती है गौरी. सामने से एक नाविक चला आ रहा है उसी की ओर. प्राणों की व्याकुलता चीख बनकर गूंजती है, "बचाओ... मैं इधर हूं... इधर... नीम के पेड़ पर..."

"घबराना मत... मैंने तुम्हें दूर से ही देख लिया था दूरबीन की सहायता से..." नाविक ने ऊंचे स्वर में सांत्वना दी.

"सच... तुम... तुम भगवान बनकर आये हो मेरे लिए..." गौरी कृतज्ञ हो उठी.

नाविक करीब आता है. गौरी नीम की टहनी से उतरकर निचली साख पर आ जाती है—जहां नाव लगा रखी थी नाविक ने. गौरी सवार होना ही चाहती थी नाव पर कि एकदम चौंक पड़ी, उस युवक को बहुत करीब से देखकर. शाम के धुंधलके में भी पहचान लिया था उसने... गौरी जड़वत खड़ी रह गयी थी, पेड़ की साख पर... और अगले ही क्षण उसने अपना इरादा बदल लिया, फिर दूसरी ओर पानी में छलांग लगा दी.

युवक इस क्षेत्र के पुश्तैनी एम. एल. ए. दिग्विजय सिंह का आदमी था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नयी शुरुआत थी. हमारे वकील ने कहा, "हमें और भी ज्यादा अफसोस है."

"...कि वह सब कुछ हुआ. हमारे ये दारोगा साहब अभी नये हैं, सिर्फ कानून जानते हैं, व्यवहार-बुद्धि अभी आयी नहीं है."

मेरे वकील ने कहा, "कानून भी नहीं जानते."

"यह भी सच है, कम से कम आपके मुकाबले तो नहीं ही जानते. बहरहाल, साहब को पूरी बात मालूम हो गयी है. आप जैसे बड़े नेता के साथ..."

मैंने कहा, "मैं नेता नहीं हूं."

"आप तो जनाब नेताओं के भी नेता हैं. शहर में अच्छा-खासा तनाव हो गया है. दिन में न जाने कितने बड़े-बड़े नेता कप्तान साहब से मिल चुके हैं. उन्हें हमारे दारोगा साहब से और भी शिकायतें रही हैं. सुना है, इस हादसे में कोई गोली पुलिस की ओर से भी चलायी गयी थी. पता नहीं, क्या सच है क्या नहीं. बहरहाल, कप्तान साहब ने जिला मैजिस्ट्रेट से मैजिस्टीरियल जांच का हुक्म करा लिया है, जब तक मैजिस्ट्रेट की जांच रिपोर्ट नहीं आ जाती, इस मामले में पुलिस कोई कार्रवाई नहीं करेगी.

हमारे वकील ने शुक्रिया कहा. अफसर बोला, "हमारे कप्तान साहब पुलिस की छवि का बड़ा खयाल रखते हैं. हर मामले को यूं ही प्रतिष्ठा का सवाल नहीं बनाते."

मैंने कहा, "मैं उन्हें जानता हूं."

अफसर बोला, "जनाब, वे भी आपको अच्छी तरह जानते हैं, बहुत अच्छी तरह."

इतनी देर में उसकी यही बात पंसद नहीं आयी. शायद पसंद आने के लिए कही भी नहीं गयी थी.

एक क्षण के लिए सब खामोश हो गये. मकान के अंदर बच्चा, शायद नींद उचट जाने से, रोने लगा. वह इस बार 'मैं, मैं' नहीं कर रहा था, मां के लिए रोया होगा. मैंने घरेलूपन से पूछा, "चाय?"

"नहीं, शुक्रिया. मैं अभी ड्यूटी पर हूं. काम खत्म करके जल्द ही वापस लौटना है."

वकील ने कहा, "अभी कुछ और बाकी है?"

मेरी ओर इशारा करके अफसर ने कहा, "अभी आपको गिरफ्तार करना है."

हमारे चेहरे बदल गये होंगे, अफसर ने शीघ्रता से कहा, "नहीं, गलत न समझें. उस आदमी का नाम-पता तो अभी मालूम हुआ नहीं. कोई लाश तक लेने नहीं आया है. अभी हम लोग सिर्फ रस्मी कार्रवाई करेंगे. आपकी यहीं पर गिरफ्तारी दिखाकर जमानत लिये लेते हैं. कप्तान साहब ने आपसे कहा ही होगा, कानून अपनी राह पर चलेगा ही. आप दो जमानतों का इंतजाम कर लीजिए."

पुलिस के जाते ही घर उल्लासपूर्ण हो गया. जमानत करनेवालों में से एक रिश्तेदार ने तुरंत ह्विस्की की फरमाइश की. मुन्नी हम लोगों के लिए चाय बनाने लगी. वकील साहब ने पलुस्कर का 'जब जानकी नाथ सहाय करें' वाले भजन का रिकार्ड लगवा दिया, पर उन्हें पूरा भजन सुनने को नहीं मिला. मैं उन्हें लेकर अपने कमरे में आ गया. बोला, "इस आदमी का कुछ तो पता चलना चाहिए. कहीं कुछ छिपाया जा रहा है."

मैंने वर्मा ब्रदर्स के साथ अपना वार्तालाप उन्हें विस्तार से सुनाया.

वकील ने कहा, "उसके नाम-पते का न जानना ही अच्छा है. आप पर यह फौजदारी का मामला तो खत्म होगा ही. शायद चालान की भी नौबत न आये. बस, यह देख लीजिएगा कि इस मकान वाले ट्रस्ट के मैनेजर आप ही न निकल आयें. पर मान लीजिए कि इस मिस्त्री के मां-बाप या किसी रिश्तेदार को पता चल गया और उसने आप पर दीवानी में दावा दायर कर दिया तो वह उलझन की बात होगी."

वे बोले, "सुनिए, मेरी सलाह मानिए. उसका पता लगाने के चक्कर में न पड़िए. मैं डॉक्टर नहीं हूं, फिर भी यह सलाह दूंगा कि एक के बजाय कांपोज की दो गोलियां खाकर आप अभी सो जाइए. बाकी बातें कल होंगी."

तब से आज तक सो रहा हूं.

उस वक्त के सभी अफसरों का तबादला हो गया है. मैजिस्ट्रेट की जांच हुई भी या नहीं, और हुई तो क्या नतीजा निकला, इस बारे में हम लोगों ने कोई पूछताछ नहीं की. बिजली के तारों के मामले में असावधानी बरतने का मुकद्दमा ढाई साल की घिस-घिस के बाद मेरे पक्ष में खत्म हो गया है, इसलिए भी मुर्दा मिस्त्री के बारे में कोई कुछ नहीं बता पाया. वर्मा ब्रदर्स का धंधा तब भी मजे में चल रहा था, अब भी चल रहा है.

जहां तक मकान वाले ट्रस्ट की बात है, मैनेजर का पता नहीं था, अब ट्रस्ट का भी पता नहीं चलता.

गलफुल्ले अर्थात प्रशांत ने अब प्लास्टिक की पिस्तौलों से खेलना शुरू कर दिया है. □

● बी-2251, इंदिरा नगर, लखनऊ—226016

चलते-चलते

कविवर रवींद्रनाथ टैगोर की पुत्रवधू श्रीमती प्रतिभा देवी ने एक गुजराती बालिका नंदिनी को अपनी दत्तक पुत्री बनाकर पाला था. नंदिनी ने एक कुत्ते को पाल रखा था. एक दिन कविवर शांति निकेतन में आश्रम-वासियों को कविता पढ़कर सुना रहे थे. श्रोताओं में नंदिनी का कुत्ता भी था, जो रह-रह कर भौंकता था. जब वह भौंकने लगता तो कविवर चुप हो जाते और उसके चुप हो जाने पर कविता पाठ प्रारंभ कर देते. एक बार कुत्ता जोर से भौंका और भौंकता ही गया तो कविवर ने प्रतिभा देवी की ओर देखकर कहा, "प्रतिभा, हमारे यह प्रतिद्वंद्वी हैं, इन्हें तो शांत करो." □

● प्रस्तुति : मनोज कुमार

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका
सर्वभाषा कहानी एवं लघुकथा प्रतियोगिता : 1984

पुरस्कार योजनाएं

कहानी प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 1500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 1000 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 750 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 400 रुपये प्रत्येक

लघुकथा प्रतियोगिता

प्रथम पुरस्कार : 200 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 150 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 125 रुपये
पांच सम्मान पुरस्कार : 100 रुपये प्रत्येक

सारिका कहानी मंच प्रतियोगिता : 1984

प्रथम पुरस्कार : 500 रुपये
द्वितीय पुरस्कार : 400 रुपये
तृतीय पुरस्कार : 300 रुपये
दस प्रोत्साहन पुरस्कार : 200 रुपये प्रत्येक

▣ विशेष

सारिका कहानी मंच के सदस्य अपनी रचनाएं सीधे हमें न भेजकर अपने महाविद्यालय/विश्वविद्यालय में स्थापित मंच के संयोजक और संरक्षक के माध्यम से भिजवाएं, जिसमें प्रमाणित किया गया हो कि रचनाकार सारिका कहानी मंच का सदस्य एवं संस्थान का छात्र है. शेष नियम अन्य प्रतियोगिताओं की भांति ही लागू होंगे. छात्र-छात्राएं किसी भी प्रकार की अन्य जानकारी के लिए अध्यक्ष, सारिका कहानी मंच, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं. वे अपनी रचना पर घर और संस्थान दोनों के पते लिखें.

नियमावली

1. इस प्रतियोगिता में हिंदी एवं सभी भारतीय भाषाओं के कथाकार समान रूप से भाग ले सकते हैं, लेकिन रचनाएं हमारे पास हिंदी में ही भेजी जानी चाहिए.
2. कहानी की शब्द-संख्या पांच हजार शब्दों से अधिक तथा लघुकथाओं की पांच सौ शब्दों से अधिक न हो तो यह सुविधाजनक होगा.
3. पुरस्कृत कहानियों, लघुकथाओं के प्रथम प्रकाशन का अधिकार हर प्रकार से 'सारिका' के पास सुरक्षित रहेगा. पुरस्कारों की घोषणा संभवतः अप्रैल, 1985 तक कर दी जायेगी.
4. कहानी/लघुकथा मौलिक एवं हिंदी तथा किसी भी अन्य भाषा में अप्रकाशित एवं अप्रसारित होनी चाहिए.
5. कहानी के साथ अपनी हस्तलिपि में यह प्रमाणपत्र भी भेजें—"मैं घोषित करता/करती हूं कि मेरी कहानी/लघुकथा (रचना का शीर्षक) मौलिक है एवं किसी भी भाषा में प्रकाशित अथवा प्रसारित नहीं हुई है. प्रतियोगिता का निर्णय घोषित होने तक इसे कहीं भी प्रकाशन अथवा प्रसारण के लिए नहीं भेजा जायेगा. मैं प्रतियोगिता के सभी नियमों से पूर्णतः सहमत हूं.
—नाम, हस्ताक्षर एवं पता
6. प्रतियोगिता में भेजी गयी रचनाएं लौटाना संभव नहीं होगा, अतः रचना की प्रति अपने पास सुरक्षित रखें.
7. रचना के साथ चित्र एवं परिचय तथा पत्र आदि न भेजें. इस विषय में निर्णय होने तक किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार भी न करें.
8. अपनी रचनाएं आप डाक से भेजने के अलावा 'सारिका कार्यालय' में 30 नवंबर, 1984 तक स्वयं आकर भी दे सकते हैं.
9. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा.
10. इस प्रतियोगिता में बेनेट कोलमैन एंड कंपनी के कर्मचारी एवं उनके निकट संबंधी भाग नहीं ले सकते.
11. रचना भेजते हुए लिफाफे पर पते की जगह नीचे प्रकाशित कूपन अवश्य चिपकाएं. आप जिस प्रतियोगिता में भाग ले रहे/रही हों, उसे छोड़कर कूपन पर बाकी शीर्षक काट दें. अन्यथा रचना प्रतियोगिता में शामिल नहीं की जायेगी.

▣ अंतिम तिथि : 30 नवंबर, 84

सारिका
सर्वभाषा कहानी/लघुकथा प्रतियोगिता
10, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलराम

सीताओं का अपहरण और रावणों की संस्कृति

रावण का पुतला जलानेवाले हम भारतीय रावण की संस्कृति के पक्ष में हैं या उसके खिलाफ! अगर पक्ष में हैं तो हमें कुछ नहीं कहना, लेकिन अगर हम रावण की संस्कृति के खिलाफ हैं तो अपने-अपने घरों में बैठे कर क्या रहे हैं?

सत्यवती सुबह घर से कालेज के लिए निकली तो मां-बाप ने सपने में भी नहीं सोचा था कि शाम को लौटकर वह घर नहीं आयेगी. आज पंद्रह दिन हो गये, उसका कुछ अता-पता नहीं है. मां-बाप को लगता है कि उनकी बेटी का अपहरण कर लिया गया है.

छह महीने पहले अपहृत हुई सुलेखा अमुक जगह के अमुक बंगले में बरामद हुई. पुलिस ने उसे उसके मां-बाप को सौंप दिया.

तीन दिन से लापता राजलक्ष्मी की लाश फलां जगह के फलां नाले में पड़ी मिली. फलां जगह से उसका अपहरण किया गया था.

इस तरह की खबरें अब आम हो गयी हैं, इतनी आम कि यहां पर 'अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियां'. हम अपने-अपने तहखानों में कैद अपनी खाल बचाने के चक्कर में पड़े रहते हैं. अपहरण के ये कृत्य कितने भी अमानवीय और आपराधिक क्यों न हों, इनका इतिहास नया नहीं है. सतयुग में सीता के साथ रावण के उस आचरण को हम क्या कहेंगे? लेकिन पुराण, इतिहास और समाज में इसकी पुरातन उपस्थिति इसे कोई वैधानिक स्थिति नहीं सौंपती. तब भी यह अपराध था, आज भी यह अपराध है. इसी अपराध के कारण तब का परम शक्तिशाली सम्राट रावण अपने तमाम वैभव और राक्षसी सेना के बावजूद तपस्वी राम के हाथों मारा गया था.

किसी भी सभ्य और उन्नत समाज ने अपहरण को कभी तर्कसंगत नहीं ठहराया, कुछ वहशी समाजों को छोड़कर. अपने देश में तो रावण के इस कृत्य के कारण आज तक प्रति वर्ष उसे फूंका

CC-0. In Public Do...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, जिससे हमारी यह मंशा जाहिर होती है कि हम इस तरह के किसी भी काम को बर्दाश्त नहीं कर सकते. रावण के पुतले को प्रतिवर्ष फूंकने के पीछे हमारी यही मंशा और इच्छा काम करती है.

अब यह और बात है कि आजादी के बाद भारतीय राजनीति की पतनशीलता ने हमारे समाज को भी पतन के ऐसे गर्त में फेंक दिया है, जहां रावण का पुतला जलाने जैसे काम लकीर पीटने से अधिक कुछ नहीं लगते, कारण कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जिस रामराज्य का सपना हमने देखा था, वह पूरा तो नहीं ही हुआ, उल्टे हम आज के भारतीय राज्य को रावण राज्य की संज्ञा दे सकते हैं, जहां आये दिन ब्याही, अनब्याही सीताओं का अपहरण होता रहता है.

सीताओं के साथ अनाचार का यह सिलसिला आज भी जारी है. भारत से घनिष्टता के साथ जुड़ी अनेक सोने की लंकाओं के विदेशी रावण ताकत की बजाय सोने-चांदी के सिक्कों के जोर से सीताओं का अपहरण कर अपने हरमों में सजा रहे हैं.

कैसे हो गया यह सब. देखते ही देखते राम संस्कृति की जगह यह रावण संस्कृति कैसे आ गयी हमारे देश में? हम रावण के इस कृत्य के कारण प्रतिवर्ष उसका पुतला फूंकते रहे और रावण की मौत तो दूर, उल्टे उसका वंश विस्तृत होता चला गया और आज हिंदुस्तान का कोई छोटे से छोटा कोना भी ऐसा नहीं बचा, जहां रावण के ये वंशधर आसन जमाकर न बैठ गये हों. कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर मिजोरम तक कहीं भी ऐसी जगह नहीं बची, जहां हमारी सीता सुरक्षित हो. पैसे और शक्ति के जोर से कभी भी रावण का कोई वंशधर सीता का अपहरण कर सकता है. उसको रोकने वाला कोई भी राम हमारे पास नहीं है. कोई राम यह हिम्मत करे तो वह भी सीता की गति को प्राप्त होगा. कोई राम खुदा न खास्ता रावण के किसी वंशधर को इस अपराध की सजा देने में सफल हो भी जाये तो देश का कानून उसे नहीं छोड़ेगा. उसको वही सजा मिलेगी, जो किसी भी अपराधी को मिल सकती है. आरोप होगा कि राम ने कानून अपने हाथ में क्यों लिया?

हालांकि कानून ने अभी तक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की है कि रावण को अपहरण से रोके या अपहरण करते उसे रंगे हाथों पकड़ें. चाहकर भी कानून कुछ नहीं कर सकता. वह तो तभी कुछ कर सकता है, जब अपहरण हो चुका हो. हमारा कानून राम को यह इजाजत भी नहीं देता कि सीता की इज्जत बचाने के लिए वह अपनी शक्ति का इस्तेमाल करे (अगर उसके पास हो). अब यह बात और है कि कभी-कभी कोई राम कानून की परवाह न कर अपनी सीता को बचा लेता है और बाद में सजा काटता है. कुछ सीताओं ने कुछ रावणों को खुद ही सजा दी और कानून ने उन्हें कटघरे में खड़ा कर दिया. कुछ रावण इस चक्कर में मारे जायें तो सीताओं या रामों को भी मृत्युदंड भुगतना पड़ता है.

देश के कोने-कोने में हो रही रोज-रोज अपहरण की घटनाएं इस बात का सबूत हैं कि देश में रावण की संस्कृति पूरी तरह से फैल हो चुकी है. जहां सीता को अपहरण की वस्तु बना दिया गया है. अब यह बात दूसरी है कि इस चक्कर में कुछ सीताएं खुद मर जाती हैं या विरोध करने के कारण कुछ रावण उनका खातमा कर देते हैं.

इस सदी की शुरुआत में जहां अपने देश में एक हजार पुरुषों के पीछे 972 स्त्रियां हुआ करती थीं, अब घटकर उनकी संख्या 935 रह गयी है. स्त्रियों के इस घटते अनुपात के पीछे और कुछ नहीं, अपने देश में फैल चुकी रावण की यह संस्कृति ही है, जिसने उसके अपहरण को इतना आसान और आम बना दिया है.

रावण का पुतला जलाने वाले हम भारतीय इस स्थिति के पक्ष में हैं या खिलाफ? यदि पक्ष में हैं तो हमें कुछ नहीं कहना, लेकिन अगर हम इसके खिलाफ हैं तो अपने-अपने घरों में बैठे कर क्या रहे हैं? □

चश्मा ▣ डॉ. मंजु गुप्त

परीक्षा परिणाम शीघ्र निकालने के लिए विश्वविद्यालय परिसर में ही उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने की व्यवस्था की गयी. प्रांत भर से परीक्षक आये हुए थे, मूल्यांकन कार्य में होड़ लगी थी. एक मेज पर परीक्षक महोदय द्रुतगति से उत्तर-पुस्तिका जांचने में संलग्न थे. सप्ताह भर का कार्य तीन रोज ही समाप्त करने के पश्चात उन्होंने वहां तैनात बाबू से बिल-फार्म लाने का आदेश दिया. आदेश सुनकर बाकी मेजों के परीक्षक चौंके और फिर तीव्रगति से अपना कार्य करने लगे. बिल फार्म के आते ही वे पास बैठी महिला परीक्षक से बोले, "आप शायद स्थानीय हैं." "जी हां."

"महिलाओं के लिए बाहर से इस कार्य के लिए आना बड़ा मुश्किल है." फिर कुछ सोचते हुए से बोले, "आप भी चश्मे का उपयोग पढ़ने-लिखने के लिए ही करती हैं शायद." "जी."

"क्या नंबर होगा आपके चश्मे का?" महिला परीक्षक, परीक्षक महोदय की फालतू बातों से उकताकर बोलीं, "टू पाइंट टू फाइव."

"नंबर तो मेरे चश्मे का भी यही है, जरा देखूं." चश्मा आंखों पर चढ़ाकर बोले, "बिल्कुल फिट बैठा है, अगर आपको आपत्ति न हो तो इसे लगाकर मैं बिल बना लूं. बिना चश्मे के ठीक से काम नहीं होता." और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये वे बिल बनाने में जुट गये. बिल बनाकर चश्मा लौटाते हुए बोले, "मेनी थैंक्स. मेरा काम आसान हो गया. यहां आया तो जल्दी में अपना चश्मा क्या आंखें ही घर भूल आया." हो-हो करते वे उठे और बिल पकड़ाकर बाहर हो गये. बाबू और परीक्षक अवाक् उन्हें देखते रह गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

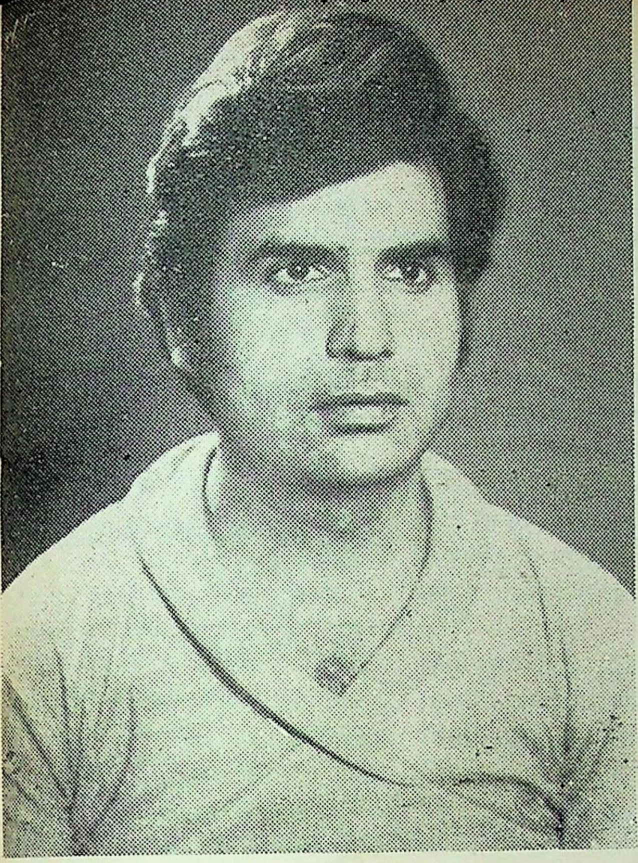

हंसि-हसि पनवा खिलउले बेईमनवा कि . . .

अपुना बसे परदेस रे बिदेसिया

क्या यह सच है कि बिहार में 'रंगमंच का मतलब 'नाचने-गानेवालों की टोली' होता है... और कोई इज्जतदार बिहारवासी अपने घर के सदस्य को रंगमंच में प्रवेश की सुविधा नहीं देना चाहता ...जबकि आंखों देखा सच यह बताता है कि बिहार में स्तरीय रंगमंच की पृष्ठ तैयार हो चुकी है और महिलाएं भी इस दिशा में कमोबेश सक्रिय हैं! —सूत्रधार की सतीश आनंद से बहसतलब बातचीत—

भरतमुनि के वंशधर

सूत्रधार

मुलुक कहते हैं गांव को. बिदेस कहते हैं शहर को! पूर्वी उत्तर-प्रदेश, पश्चिमी बिहार समेत मध्य बिहार तक यह शब्द चलता है. अवधी, पूर्वी, भोजपुरी और बंगला के मिश्रित शब्द, संगीत की लयता के साथ जी रहे हैं. कोई कड़वाहट नहीं, कोई तनाव नहीं, जो कुछ है वह सामनेवाले के सामने है. जहां दिल में सफाई रहती है. यही बिहार जब बिदेस (बंबई, कलकत्ता दिल्ली, जमशेदपुर) की तरफ रुख करता है तो 'भइया' हो जाता है. सच होने की कीमत यह होती है कि वह हिकारत की नजर से देखा जाता है. यह सूबा गरीबी का नहीं गैरबराबरी का मरीज है. आंदोलन और जलसों-जुलूसों का सूबा है.

लोक-कला की सारी विधाएं पेशे से, आर्थिक स्थिति से और सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई हैं. चाहे वह धोबियों का नाच हो या मछुआरों का गीत. सोहर, गाली, कजरी या विवाह-गीत. हर जगह हर गांव में, हर जाति में उसके पेशा (जाति), आर्थिक रचना और सामाजिक स्थिति आराम से उघाड़ कर देखी जा सकती है. 'बिदेसिया' इसी लोक का एक मजबूत हिस्सा है. भिखारी ठाकुर की शब्द रचना, संगीत, उसके शरीर की गति उस बिंब का निर्माण कर देती रही जिससे उसकी ग्राह्यता जनसामान्य में अंदर तक घर कर जाती रही. उनके बाद उनके तथाकथित वारिसों को क्या किया भगवान ही जाने! बिदेसिया और पूरबी, इन दो विधाओं का असर दूर-दूर तक तो गया, लेकिन अपने बिहार में ही हीनभावना के चलते दम तोड़ने लगा. बिहार के कथित आभिजात्य वर्ग में अभी तक इसे मान्यता नहीं मिली है. साझेदारी की बात तो दूर रही, देखना-सुनना तक इस वर्ग के परिवार के लिए मनाही के खाते में है.

कोरी रे चुनरिया में दगिया लगाइ गइले
अपुना बसे रे परदेस.

"समझदार, इज्जतदार और 'रुआब' के मनई को नाच-गाने से दूर रहना चाहिए यह पतुरिया और भड़ओं के खेल हैं." यह मान्यता अभी तक बिहार में चल रही है. कोई भी परिवार नाटक या संगीत में अपने परिवार के किसी सदस्य को लगाना मंजूर नहीं कर पा रहा है. इस सूबे के लिए यह सोचना कि निकट भविष्य में अपनी

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जमीन पर कुछ काम कर सकेगा, मुश्किल लगता है. थोड़ी बहुत शायद कोई संभावना बनती भी लेकिन सिनेमा, टी.वी., रेडियो का बढ़ता प्रभाव और भी खतरा पैदा कर रहा है. इन सबके बीच में बिहार रंगमंच गुणात्मक दृष्टि से ऊपर न भी जाता दिखायी दे तो भी संख्या की नजर से इस समय तकरीबन सौ से अधिक रंगमंच के ग्रुप काम कर रहे हैं. कुछ की निगाह सीधे फिल्म प्रवेश पर है तो कुछ दलीय राजनीति के साथ लगे हैं. जो भी हो भविष्य की संभावनाएं बनती दिखायी पड़ती हैं. लेकिन एक बात स्पष्ट है कि बिहार की राजनीतिक एवं सामाजिक बुनावट की पकड़ इतनी मजबूत और जड़ हो चुकी है कि जब तक उसमें किसी प्रकार ढिलाई नहीं आती और आम आदमी अपनी साझेदारी की इच्छा जाहिर नहीं करता तब तक यह संभव ही नहीं है कि लोक-कला या संस्कृति के स्वरूप में कोई गुणात्मक फर्क आ पायेगा सतीश आनंद का अपना एक ग्रुप है जो 1962 से लगातार काम करता आ रहा है. इन्हीं सतीश आनंद से सूत्रधार की एक लंबी बातचीत का छोटा अंश...

▣ बिहार में रंगमंच क्या है?

सवाल सपाट है! दरअसल यही मूल सवाल है. बिहार में रंगमंच नाचने-गाने वालों की मात्र एक टोली है, जिन्हें हिकारत की नजर से देखा जाता रहा है. कोई इज्जतदार बिहारी अपने परिवार के किसी सदस्य को रंगमंच में आने तक सुविधा नहीं देना चाहता. यहां तक कि उन्मुक्त वातावरण में

सतीश और अंजु झा : जातहि पूछो...

रंगमंच देखना तक गवारा नहीं करते थे. औरतों और लड़कियों की तो बात ही छोड़ दीजिए. लेकिन धीरे-धीरे स्थिति बदल रही है. अब तो कुछ लड़कियां भी मैदान में उतरी हैं.

▣ अब जो बदलाव आया है. यह बना रहेगा? रंगमंच आगे बढ़ता जायेगा?

कहना आसान नहीं है!

▣ खतरा किससे है?

रंगमंच से! इस समय बिहार में कुल कितने ग्रुप काम कर रहे हैं, नहीं कह सकता. लेकिन अकेले पटना में मेरे अंदाज से तकरीबन 100 ग्रुप तो होंगे ही. और रंगमंच के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं वह रंगमंच के लिए घातक हो सकता है.

▣ लोगों का कहना है कि इसमें से अधिकांश लोग वे हैं जो एक-दो प्रोडक्शन में आपके साथ काम करते रहे फिर अपने ग्रुप बना लिये?

'नो कमेंट'.

▣ और आप?

मैं 1962 से रंगमंच में आया. कुछ करता रहा, देखता रहा. एक दिन अचानक दिल्ली आ गया. एन. एस. डी. में दाखिला ले लिया. '71 की बात है. अंग्रेजी और अलकाजी साहब से नहीं निभी. वापस बिहार चला गया. और बोलकर गया कि कुछ करके दिखाऊंगा. सो कर रहा हूं. करता जा रहा हूं.

▣ अगर दिल्ली में ही रह जाते तो?

दिल्ली का होकर रह जाता. बिहार की मेरी अपनी जमीन, संस्कृति, कला सब छूट जाती. मैं भी दिल्लीवालों की तरह नकली प्रयोगात्मक, अमूर्त बिंबहीन नाटकों के चक्कर में गोता लगाता घूमता फिरता.

▣ और वहां बिहार में?

कुछ दिनों तक शहरी भटकाव रहा. लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता यह महसूस होने लगा कि हमारी डगर दूसरी है बिहार की अपनी जमीन है. नौटंकी है. बिदेसिया है, भोजपुरी है. हमें इधर चलना चाहिए.

▣ तो?

और तय कर लिया कि अब बिदेसिया पर काम करना है. इस विधा को इन्हीं

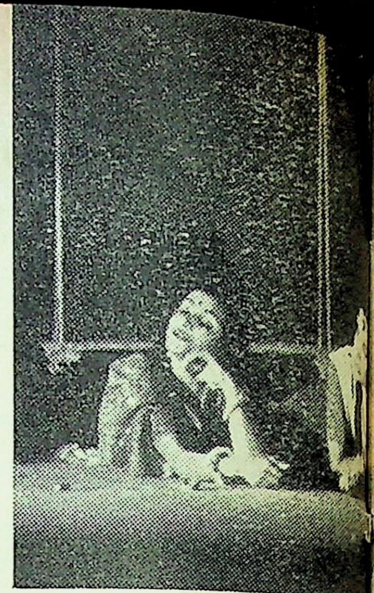

सतीश के निर्देशन में 'अंबपाली'

संकेतों, रूपों और वाद्यों के साथ जोड़कर काम करना है. हम चाहते हैं कि रंगमंच में बिदेसिया को देश के पैमाने पर खड़ा करें... और करेंगे.

▣ बिदेसिया है क्या?

यह बिहार की एक लोक-शैली है, जिससे आम आदमी का रिश्ता है. केवल मनोरंजन का नहीं, उसके पेशे व्यवहार, आचरण, परेशानियों और मौज-मस्ती का ईमानदार फलक. जहां जिस विधा में आम आदमी अपनी शक्ल देखता है. भाषा, आकार, बिंब, मंच-संरचना, विषय सब कुछ उसका अपना लगता है.

▣ एक्टर साथ देंगे?

देंगे! उन्हें भी समझ आ गया है. मैं अपना ग्रुप लेकर दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, चंडीगढ़ सब जगह जाता हूं. हमारे लोगों में भी यह एहसास मजबूत हुआ है कि अपना अलग अस्तित्व बनाना जरूरी है. मैं तो इसलिए भी आशान्वित हूं कि हमारे पास मजबूत और समझदार एक्टर हैं.

▣ जैसे?

सुमन कुमार, बसंत कुमार, गुन्नू श्रीवास्तव, कन्हैया, वालसा उत्पल, अंजना भंटी, नीता अधिकारी, कविता कुंदरा... कहां तक नाम गिनायें!

▣ अगली बार. . .

जब हम बिदेसिया लेकर दिल्ली आयें तब! ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनावस्तु के अपरिचय से बना उपन्यास

▣ मधुरेश

किसी रचना में निहित रचनाकार का श्रम और संघर्ष ही अंततः उसकी सफलता और सार्थकता के निर्धारक घटक होते हैं. इस श्रम और संघर्ष के बाद भी, बहुत से कारणों से रचना असफल हो सकती है, लेकिन कभी-कभी रचनाकार की निष्ठा के कारण यह असफलता भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है. इसके विपरीत ऐसी रचनाएं आये दिन छपती रहती हैं जो किसी रचनात्मक दबाव और वैचारिक समझ के बिना, केवल व्यावसायिक कारणों से लिखी जाती हैं. कभी-कभी उनके लेखन-प्रकाशन की आसानियों पर गर्व करते हुए एक उदार और अमूर्त्त किस्म के मानवतावाद की दुहाई भी दी जाती है. लेकिन ऐसी कोई दुहाई रचना की आंतरिक दुर्बलता को छिपाने में लाचार साबित होती है और वास्तविकता अपने आप उभरकर सामने आ जाती है.

मंजुल भगत का लघु उपन्यास **'खातुल'** इस स्थिति का बहुत अच्छा उदाहरण है. राजनीति निरपेक्ष लेखन की दुहाई और लेखिका की मासूम मुद्रा के बावजूद वास्तविकता परत-दर-परत उद्घाटित होती चली जाती है. खातुल एक अफगान युवती है जो अपने देश में रूसी हस्तक्षेप के बाद अपने कुछ संबंधियों के साथ दिल्ली आ गयी है. उनका वर्ग-चरित्र बहुत साफ है, वे लोग वहां अमीर व्यापारी थे, दिल्ली में दो हजार रुपये महीने का मकान लेकर रहते हैं और अमरीका जाकर बसने की जी तोड़ कोशिश में लगे हैं. खातुल की मौसी और अन्य लोग चले भी जाते हैं लेकिन उसे वीसा नहीं मिलता, क्योंकि उसका कोई सगा-संबंधी वहां नहीं है. उसके देश से आने वाले लोगों के जरिये जो सूचनाएं मां के द्वारा उस तक पहुंचती हैं, उनका सार यह होता है कि अब वह उनसे मिलने और वापस आने की आशा छोड़कर अपनी मर्जी और उन लोगों की इच्छा का खयाल करते रहते अपना जीवन साथी तलाश ले. जो दहेज वहां उन लोगों ने इकट्ठा किया था, उसे बेचकर वह रुपया उसके लिए भिजवा देती हैं ताकि वह अपनी पसंद की चीजें खुद ले सके.

खातुल से लेखिका का परिचय मात्र इतना है कि उसके पड़ोस में रहने के कारण वह उसके संपर्क में आती है और चंद मुलाकातों, सतही तौर पर दी गयी सूचनाओं या खातुल के नाम आने वाले पत्रों से मिली जानकारी के आधार पर वह इस कहानी का ढांचा खड़ा करने की कोशिश करती है. राजनीति से अपने को अलग रख और बताकर, शुद्ध मानवीय आधार पर लेखिका रूसियों को यहां खलनायक के रूप में पेश करती है. वे आततायी और अत्याचारी हैं. मलाईजान की किशोरी बेटी के मानसिक आघात और आतंक का कारण वे ही हैं और खातुल की नियति को बलूची खानाबदोशों की नियति में बदल देने वाले भी वे ही हैं. समूची स्थिति को उसकी समग्रता और राजनीतिक जटिलताओं के साथ समझने की किसी वयस्क कोशिश के अभाव में लेखिका भावुकतापूर्ण स्थितियों और प्रसंगों पर केंद्रित करने को विवश है. छोटे भाई के नये चित्र के पीछे टेढ़ी-मेढ़ी लिखावट में खातुल से लौट आने का आग्रह और खातुल के नमकीन काजू टूंगते हुए, एक-एक टुकड़ा परिवार के लोगों के नाम पर मुंह में डालने जैसे प्रसंग, क्योंकि उसके मुल्क में यह मेवा नहीं होता, पूरे उपन्यास में अपवाद जैसे हैं. . .

पतझर के छतनार पेड़-सी खातुल अंततः एक बार फिर बहारों की दुनिया में पहुंचती है—जब आफताब के साथ उसे अमरीका जाने का वीसा मिल जाता है और अपने संबंधियों के साथ उनके नये शुरू किये व्यापार में शामिल होने की कल्पना उसे नयी कोंपलों वाले पेड़ की तरह सिहराने लगती है.

खातुल को लेकर उपन्यास बुनने की समस्या का रचनात्मक स्तर पर स्वयं लेखिका को एहसास न हो, ऐसा नहीं है.

वस्तुतः यह इतनी सतही जानकारी और बहुत-कुछ रचनावस्तु के अपरिचय से बना उपन्यास है, जो अपने अतिशीर्ण कलेवर में भी अकारण बिखराव का शिकार है. कुत्ता, शैवी और जरी खानम तथा उसके आशिक मिजाज पति की कहानी का कुछ भावुक लटकों के अतिरिक्त और कोई उपयोग नहीं है. स्पष्ट ही **'खातुल'** स्त्री लोकप्रियता और व्यावसायिक दबावों से बने उपन्यास का उदाहरण है. विदेशी पात्रों और पृष्ठभूमि पर उनकी रचनाएं पढ़ने के बाद **'खातुल'** की सीमाएं बहुत साफ दिखाई देने लगती हैं.

रचनाओं में औरों का शामिलेहाल बुरी बात नहीं, लेकिन उसकी इच्छा और आशा के तर्क को भी एकदम भुलाया नहीं जा सकता. ☐

▣ खातुल : मंजुल भगत, प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, मूल्य : 12.50 रु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

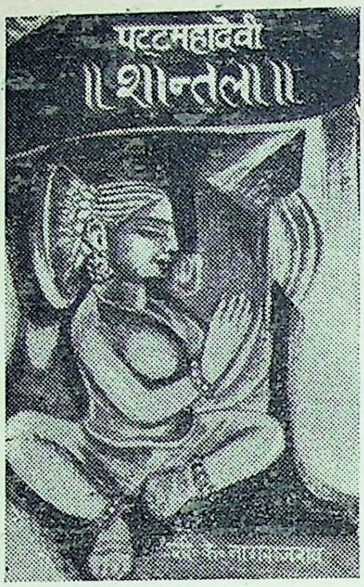

मानवीय मूल्यों की स्थापना का सरोकार

■ महेश दर्पण

कन्नड़ साहित्य के लोकप्रिय चरित्र शांतला देवी पर तीन-चार उपन्यास पहले भी लिखे जा चुके हैं, पर इधर बहुचर्चित कथाशिल्पी **सी. के. नागराजराव** के वृहद् उपन्यास **पट्टमहादेवी शांतला** के एकाएक चर्चित हो उठने के पीछे प्रमुख कारण यही लगता है कि यह पहले के उपन्यासों-सी अप्रामाणिक ऐतिहासिक जानकारी और कल्पित कथा-स्थितियां लेकर नहीं चला है. इतिहास के उपलब्ध प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर शांतला एक सर्व-प्रतिभा संपन्न, गुण-शील के समुचित समन्वय से युक्त संयमी नारी के रूप में सामने आती है. यही वह कारण है, जो संभवतः शांतला को एक साधारण हेग्गड़े परिवार की बालिका से पट्टमहा-देवी जैसे महत्त्वपूर्ण पद तक पहुंचाता है.

उपन्यास की कथा कुछ इस तरह बढ़ती है कि बालपन से ही जहां शांतला को तत्कालीन कला, संस्कृति, शिल्प, धर्म, साहित्य, जन-जीवन, आर्थिक व राजनैतिक स्थितियों की सूक्ष्म जानकारी रहती है, वहीं वह षड्यंत्रों, स्पर्धाओं, राष्ट्रद्रोह और राष्ट्र प्रेम, स्वार्थ और श्रद्धा, युद्ध और सौहार्द्र के कारणों-परिणामों से भी अपरिचित नहीं रहती. यह भी एक विचित्र संयोग ही कहा जाना चाहिए कि धार्मिक दृष्टि से शांतला को प्रारंभ में ही सर्वधर्म समभाव का माहौल मिला. पिता शैव भक्त तो माता जिनभक्त. . . इन तमाम स्थितियों के बीच से होकर गुजरते हुए यह उपन्यास मूलतः मानवीय मूल्यों की स्थापना का सरोकार लेकर चला है. ऐतिहासिक जानकारी के साथ-साथ कथानक को रोचक बनाये रखने के लिए उपन्यास-कार ने कतिपय काल्पनिक घटनाएं भी बड़ी खूबसूरती से पिरोयी हैं.

उपनयन-समारोह के बहाने राज-परिवार की आंतरिक झलक तो सामने आती ही है. . . यह भी साफ हो जाता है कि युवरानी एचल देवी शांतला के विशिष्ट चरित्र से प्रभावित हैं. राज-कुमार बिट्टिदेव और शांतला का साथ यहीं से शुरू होता है. दंडनायक की पत्नी चामव्वे (जो कहीं यह सोचे बैठी है कि उसकी तीन पुत्रियां इसीलिए हुई हैं कि तीनों राजकुमारों से उनका विवाह होगा) यह सब देखकर आतंकित हो उठती हैं और शांतला तो जैसे कांटा ही बन बैठी है उसके लिए. कूटनीति में विश्वास रखने वाली यह स्त्री इतनी हठी है कि अपनी बात मनवाने के लिए कुछ भी कर सकती है. समूचे उपन्यास में तो जाने क्या कुछ किया हो. . . (फिलहाल हिंदी में इसका पहला ही भाग प्रकाशित हुआ है. शेष भाग भी शीघ्र प्रकाश्य हैं.) इस भाग में वह हेग्गड़े परिवार के लिए तंत्र-मंत्र की शक्ति तक प्रयोग करने से नहीं चूकती.

युवरानी एचल देवी, राजकुमार बिट्टिदेव, रेविमय्या, चामव्वा, हेग-गड़ती, शांतला, बल्लाल देव, महाराजा विनयादित्य और दंडनायक के इर्द-गिर्द घूमती यह कथा जहां मुख्यतः चामव्वा द्वारा अपनी पुत्रियों को किसी न किसी तरह राजपरिवार की बहू बनाने के प्रयासों से जुड़ी है वहीं परमार, चालुक्य, चोल, सांतर, चेंगाल्व, आलुप व कदंब आदि के युद्ध भी संदर्भवश आते हैं. युवरानी एचल देवी व्यवहारकुशल महिला है जिसकी भरसक यह कोशिश रहती है कि उससे कहीं कोई गलत काम न हो. हेग्गड़ती और चामव्वे को लेकर भी उसमें जो कशमकश चलती रहती है. . . उसे वह प्रकट नहीं होने देती और घटनाओं, पात्रों व स्थितियों के जरिए निर्णय तक पहुंचने की कोशिश करती है.

शांतला से बहुत कुछ मेल खाता व्यक्तित्व है छोटे अप्पाजी. . . बिट्टिदेव का. व्यवहार कुशलता, जिज्ञासुवृत्ति और सूक्ष्म ग्रहण शक्ति उसके प्रमुख गुण हैं, जो शांतला के प्रति उसमें आत्मीयता जगाने में सहयोगी रहते हैं.

वर्तमान सदर्भों में भी यह उपन्यास अपनी प्रासंगिकता कई अर्थों में स्पष्ट करता है. लेखक का विश्वास है कि भार-तीय मूल धर्म जैसे उद्भूत हुआ, उसी रूप में कभी स्थिर नहीं रहा. जैसे-जैसे मानव के भाव और विश्वास बदलते गये वैसे ही वह भी परिवर्तित होता गया. मानव धर्म ही सब धर्मों का लक्ष्य और मूलभूत आधार है. भिन्न-भिन्न धर्मों के अस्तित्व में होने के बावजूद परस्पर निष्ठा और विश्वास के महत्त्व को रेखांकित करना इसकी कोशिश रही है. राजपरिवारों में सत्ता का अधिकांश हथियाने के लिए जैसी कोशिशें प्रायः की जाती रही हैं. . . लगभग उसी प्रकार की जोड़तोड़ दंडनायक की पत्नी चामव्वा भी करती रहती है. स्वयं दंडनायक भीतर से भले ही यह चाहते हों कि उनकी पुत्री राजकुमार की पत्नी बने, पर ऊपर से वे सावधान, कर्त्तव्यनिष्ठ बने रहना चाहते हैं. उत्तरार्द्ध तक आते-आते उन्हें भी यह एहसास होने लगता है कि कोई है जो उनके बारे में राजा से चुगली कर रहा है. . . वे यह प्रयास भी करते हैं कि ऐसे लोगों से किसी तरह बचे रहें. भीतर के दर्द को भीतर ही सहते हुए, बाहर से हंसते हुए खुश दिखना भी उनकी एक विवशता है. . . जो एक तरफ उन्हें राजा का विश्वास अर्जित करने के लिए झेलनी होती है तो दूसरी तरफ बेटी और पत्नी की खुशी के लिए. दंडनायक में यह परिवर्तन चामव्वा द्वारा सायास ही लाया गया है. यही चामव्वा बल्लाल को भी धीरे-धीरे इस तरह वशीभूत करती है कि वह न सहानु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्ति का अर्थ जान पाता है न अनुकपा का ही. स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि वह एचल देवी की नजरों में उस दिशा की ओर बढ़ चला है, जहां उसे सिंहासन पाने के भी अयोग्य घोषित किया जा सकता है. किशोर मन:स्थितियों में जीता यह पात्र मां के समझाने-बुझाने पर अपने व्यवहार में तेजी से बदलाव लाता है.

एक जिम्मेदार मां के रूप में महत्त्व-पूर्ण चरित्र उभरकर आता है एचल देवी का. वह स्नेह और ममता के बीच संतान के संदर्भ में कभी भी विवेक-हीनता को जगह नहीं देती. उसकी भावुकता क्षणिक होती है और व्यवहार इस बात के लिए प्रयत्नशील कि यथार्थ की ओर से मुंह न मोड़ा जाए. . .ठीक इसके विपरीत चामव्वा एक ऐसी नारी है जो अपनी इच्छाओं के लिए अपराध भी कर सकती है. उसकी सोच भी इतनी सीमित है कि वह अपनी ही तरह शांतला की मां हेग्गड़ती को भी समझ बैठती है.

दरअसल इस उपन्यास का कैनवस इतना बड़ा है कि ऊपरी तौर पर अपनी प्रभावपूर्ण भूमिकाओं के कारण महत्त्व-पूर्ण पात्रों के रूप में राजपरिवारों के लोग ही सामने आ पाते हैं. . . किंतु अपनी सामान्य भूमिकाओं में भी कई पात्र उल्लेखनीय प्रभाव छोड़ते हैं. रेविमय्या और कवि नाग चंद्र इसी तरह के पात्रों में हैं. जहां रेविमय्या एक कर्त्तव्यनिष्ठ स्वामिभक्त सेवक है वहीं कवि नागचंद्र सही अर्थों में विद्वान. विद्या का सही उपयोग क्या है, यह वह अच्छी तरह जानता है. अपने उत्तर-दायित्व को निभाते हुए निधड़क होकर व्यवहार करता है. . . यहां तक कि उसे बड़े राजकुमार की अनियमितताओं और कमजोरियों को रानी के सामने प्रकट करने में कोई परेशानी नहीं होती. उनका यह आचरण दंडनायक के परिवार के लिए अहितकर भी हो सकता है, पर वह अपने पद के अनुरूप आचरण को प्रमुखता देता है. पद की गरिमा के अनुरूप आचरण गंगराज में भी देखा जा सकता है जो राज्यनिष्ठा के सामने बहन का मोह नगण्य मानकर चलता है.

उपन्यास के पहले भाग की कथा-यात्रा शांतला को पिता द्वारा स्थितियों के अनुसार आचरण करने की शिक्षा देने तक ही है. यहां दंडनायक मरियाने का एक ऐसा रूप देखने को मिलता है, जहां वह एक दंडनायक तो है ही, सहृदय पिता भी है. . . पर इस सबसे ऊपर वह राजघराने से बने निष्ठायुक्त संबंध को सबसे ज्यादा तरजीह देता है.

उपन्यास की बुनावट कुछ इस किस्म की है कि वर्णनात्मकता उतनी नहीं अखरती जितना लंबे संवाद. फिर भी यह देखकर सहज ही आश्चर्य होता है कि पात्रों के बीच चलने वाले इन संवादों का विषय कुछ भी क्यों न हो, भाषा अपने में सचेत प्रवाह लिए रहती है.

ग्यारहवीं शती के अंतिम दशक से प्रारंभ हो बारहवीं शती के चौथे दशक के प्रारंभ तक के जन-जीवन को निरूपित करने की दिशा में यह उपन्यास एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है, जिसमें उपन्यासकार अपनी ओर से आदर्श को प्रमुखता देता है. पहला भाग उन पाठकों में आगे के लिए जिज्ञासा जगा जाता है जो यह जानते हैं कि बिट्टिदेव ही आगे चलकर महाराज विष्णुवर्धन बनते हैं. . . तो बल्लाल जो उनसे बड़े हैं वे. . .? □

पट्टमहादेवी शांतला (भाग : एक): सी. के. नागराजराव, भारतीय ज्ञान-पीठ, बी-45-47, कनॉट प्लेस, नयी नयी दिल्ली-110001
मूल्य : 48 रुपये

लघुकथाएं न होकर भी अच्छी रचनाएं

▣ राकेश तिवारी

लघुकथाओं को हास्य मानना एक नासमझीपूर्ण वक्तव्य है. साथ ही लघु-कथा दृष्टांत, रूपक, लोककथा, बोधकथा, नीतिकथा, व्यंग्य तथा संस्मरण से भी एकदम भिन्न है––एक अलग विधा है. संवाद-योजना, पृष्ठभूमि एवं चरित्रचित्रण की लघुकथा में कोई गुंजाइश नहीं होती. किसी सूक्ष्म कथ्य थोड़े-से शब्दों में कहने से ही एक क्षणिक कौंध रूपी लघुकथा का जन्म होता है, अन्यथा लघुकथा शब्दों के चक्रव्यूह में उलझ जाती है. और यदि उपरोक्त बातों की कसौटी पर विष्णु प्रभाकर की किताब 'आपकी कृपा है' (प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, त्रिनगर, दिल्ली दिल्ली-110035) को परखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि उक्त संकलन लघुकथा संग्रह है ही नहीं.

फिर भी जाने किस मोहवश 'आपकी कृपा है' को लघुकथा संग्रह घोषित कर दिया गया. आठवें दशक में लघुकथा ने जो मानदंड स्थापित किये हैं, उन्हें मद्देनजर रखते हुए यदि विष्णु प्रभाकर की लघुकथाओं की तुलना की जाये तो इन्हें बहुत सामान्य मानने में संकोच नहीं होगा, किंतु यदि बोधकथा, संस्मरण, नीतिकथा, व्यंग्य, दृष्टांत तथा चुटकुले के रूप में देखा जाये तो निश्चय ही सारी रचनाएं बहुत अच्छी हैं.

चौसठ रचनाओं के उक्त संकलन में 'फर्क', 'चोरी का अर्थ', 'दोस्ती' 'कौन जीता कौन हारा', 'शैशव की ज्यामिति––'तीन कोण', 'शैतान और शिव', 'धन्य है आपकी परख', और 'मुहब्बत' अच्छी रचनाएं हैं. 'पाप की कमाई', 'चुटकी', 'दान', 'प्रेरणा', 'रोटी या पाप' ,तथा 'ईश्वर का चेहरा' तो बेहद अच्छी रचनाएं कही जा सकती हैं. कई रचनाओं में मुस्लिम धर्म के प्रति हिंदू धर्म के छुआछूत के व्यवहार पर लेखक की संवेदना स्पष्ट परिलक्षित होती है. रूढ़ियों का विरोध, आदर्शों का पालन, दायित्वों का निर्वाह तथा सत्य का अनुकरण जैसे स्वर खूब उभरे हैं. लगभग सभी रचनाओं में लेखक की दृष्टि मानवतावादी रही है. सर्वाधिक महत्वपूर्ण है विष्णु प्रभाकर के बहुत छोटे-छोटे संपूर्ण वाक्य. शिल्प भी प्रशंसनीय है. भाषा अवश्य जर्जर लगती है. 1942 से 1982 के मध्य लिखी गयी उक्त रचनाओं का अपना महत्व है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी अकादमी का सम्मान अर्पण समारोह संपन्न

▣ बलराम

पिछले दिनों हिंदी अकादमी, दिल्ली का सम्मान अर्पण समारोह कमानी हाल में संपन्न हुआ, जिसमें 1982-83 के लिए सर्वश्री गोपालप्रसाद व्यास, डॉ. उदयभानु सिंह, 1983-84 के लिए श्रीमती कृष्णा सोबती, सर्वश्री क्षेमचंद 'सुमन', चिरंजीत और डॉ. रामदरश मिश्र को एक-एक दुशाला, प्रशस्ति पत्र और इक्यावन सौ रुपये प्रदान किये गये. अकादमी के सचिव डॉ. नारायण दत्त पालीवाल ने कहा कि 'भाषा और साहित्य के क्षेत्र में समर्पित भाव से काम करनेवाले मनीषी विद्वानों और हिंदी के विकास तथा संवर्द्धन में संलग्न साहित्यकारों के प्रति आदर भाव और श्रद्धा-सम्मान व्यक्त करना अकादमी का पुनीत कर्तव्य है.' लेकिन समारोह में देखा यह गया कि सम्मानित लेखकों का सम्मान कम, अपमान अधिक हुआ.

अपमान की शुरुआत तो समारोह के निमंत्रण पत्र से ही हो गयी थी जिसमें बाकी सब के नाम तो अंकित थे, सिर्फ उन लोगों के नाम अंकित नहीं थे, जिनका सम्मान होना था. कमानी हाल में न जाने कहां-कहां के लोग आकर जम गये थे और सम्मानित लेखकों को कहां और कैसे बैठना है, इसकी फिक्र करनेवाला कोई नहीं था. मंच पर एक दर्जन से अधिक लोग सुशोभित हो रहे थे और सम्मानित साहित्यकार नीचे कुर्सियों पर सामान्य लोगों के बीच. देखकर लगा कि आज के रचनाकार ने मानो अपनी गरिमा खो दी है. बताया जाता है कि किसी राजनेता से सम्मानित न होने की अपनी जिद के कारण एक लेखक ने यह सम्मान ठुकरा दिया और अकादमी के एक सदस्य ने खुद को ही सम्मानित करवा लिया. चर्चा है कि इन सम्मानों के लिए कई लाबियां सक्रिय थीं. जो पुरस्कार किन्हीं लाबियों के शिकार हो जाते हैं, उनकी विश्वसनीयता को कोई बनाये नहीं रख सकता. यह अकादमी का पहला सम्मान अर्पण समारोह था, जिसकी गरिमा और विश्वसनीयता को बनाये रखने की विशेष जरूरत थी, पर ऐसा हो नहीं सका.

सम्मानित लेखकों को मंच पर बिठाया जाना चाहिए था, जहां अनपेक्षित किस्म के लोग विराजे हुए थे, जिनकी मंच पर कोई जरूरत नहीं थी. यह भी बर्दाश्त किया जा सकता था, अगर क्रमशः उन्हें मंच पर बुलाकर विदूषक न बना दिया गया होता. सम्मान करनेवाले दंभ भाव से तने और सम्मानित होने वाले कृतज्ञ भाव से इस तरह झुके-झुके जा रहे थे, मानो सम्मान का बोझ उनसे संभल न पा रहा हो और वे सम्मान की आंच से पिघल-पिघलकर बहे-बहे जा रहे हों. साहित्यकों पर राजनीतिकों का यह बढ़ता हुआ दबाव हिंदी साहित्यकार की अस्मिता और गरिमा के लिए खतरनाक है, जिस पर समय रहते ध्यान न दिया गया तो एक दिन हमारे साहित्यकार इन राजनीतिकों के चाकर बनकर रह जायेंगे. □

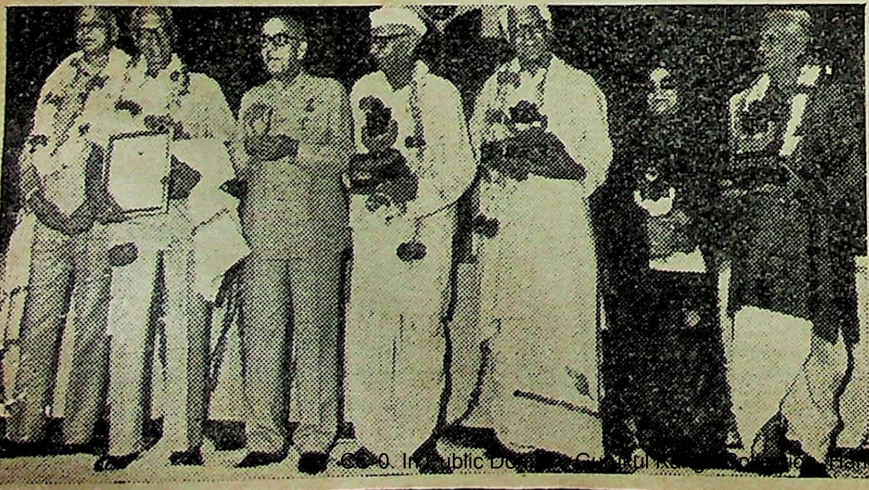

● सर्वश्री उदयभानु सिंह, चिरंजीत, जगप्रवेशचंद, क्षेमचंद सुमन, रामदरश मिश्र, श्रीमती कृष्णा सोबती और गोपालप्रसाद व्यास

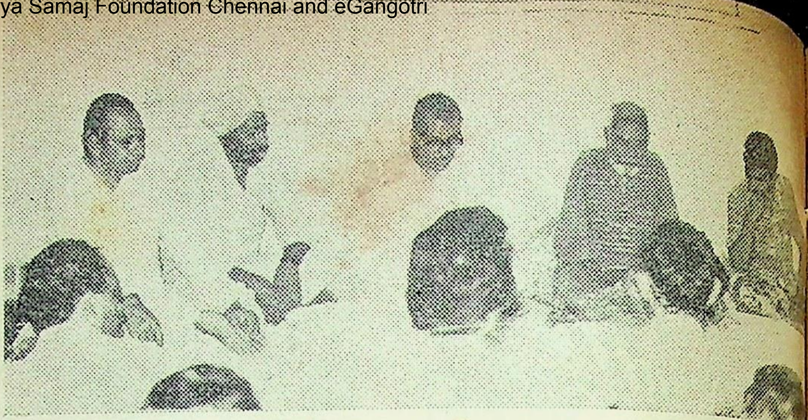

पिछले दिनों 'शिवालिक पत्रकार परिषद्', हरिद्वार की उद्घाटन गोष्ठी हरिद्वार में संपन्न हुई. प्रख्यात कवि नागार्जुन का शॉल और गंगाजली देकर सम्मान किया गया. चित्र में बाएं से : सहारनपुर के प्राध्यापक कवि--डॉ. सुरेशचंद्र त्यागी, परिषद् के अध्यक्ष स. दर्शनसिंह, अध्यक्ष डॉ. विष्णुदत्त राकेश, बाबा नागार्जुन और महेश दर्पण.

इनके अतिरिक्त के. एल. दीवान, समीर, शशिकांत मिश्रा और संस्था के मंत्री कमलकांत बुधकर ने भी काव्यपाठ किया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गायत्री देव्यै नमः

चुंबक चिकित्सा—एक वरदान

जिस समय चुंबक का शरीर को स्पर्श किया जाता है तब चुंबकीय प्रवाह शरीर में बहता है जिससे शरीर में दुय्यम स्वरूप की, विद्युत लहर का निर्माण होता है. इस चुंबक लहर तथा चुंबक प्रवाह के संसर्ग से उष्णता का निर्माण होता है जो शरीर की वेदना, सूजन आदि कम करने में उपयोगी होती है. रक्त वाहिनी में हेमोग्लोबीन सुगमता से बहने लगता है फलस्वरूप कैलशियम सरीखे क्षारों का थर कम होता है इस तरह रक्त शुद्ध हो कर सरलता से प्रवाहित होता है इससे हृदय ज्यादा कार्यक्षम होता है और कमजोरी दूर होती है. हार्मोंस का प्रवाह बढ़ने से भी त्वचा पर निर्खार आकर तारुण्य टिकता है. चुंबक लहर त्वचा छिद्रों में से शरीर में प्रवेश करती हैं और प्रतिकार शक्ति बढ़ती है, सशक्त रक्त पेशी की संख्या बढ़ती है. निरोग व्यक्ति भी प्रतिदिन दो बार सुबह शाम 15-20 मिनिट उपचार करने से प्रकृति उत्तम रहती है. आज की आधुनिक औषधियों का रोगियों पर कितना विपरीत प्रभाव पड़ता है, यह सर्वविदित है. किन्हीं किन्ही दवाइयों का रिअक्शन प्राणघातक होता है. परंतु चुंबक चिकित्सा ही एक निरापद पद्धति है, दुष्परिणाम होने का प्रश्न ही नहीं उठता.

चुंबक चिकित्सा से स्थूल रूप से निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

1. रक्ताभिसरण सुधरता है. 2. सादी तथा गंभीर बीमारियों पर विश्वसनीय उपाय. 3. हर उम्र के स्त्री-पुरुष के लिए उपयुक्त. 4. कम समय में व्याधि निवारण. 5. पूर्व तैयारी की जरूरत नहीं. 6. कम खर्च का है. 7. कम समयलगता है. 8. व्यक्ति आदत का गुलाम नहीं होता. 9. इसके सेवन से कार्यक्षमता, उत्साह तथा तारुण्य रहता है. 10. चुंबक शारीरिक वेदना दूर करती है. 11. चुंबक की शक्ति कम नहीं होती. 12. किसी प्रकार का विपरीत परिणाम नहीं.

चुंबकीय जल के नियमित सेवन से शरीर की पाचन, उत्सर्जन तथा मज्जा संस्था के कार्य में विशेष सुधार होता है. इससे भूख बढ़ती है, अन्नपाचन सुचारु रूप से होता है तथा पेट का अम्लांश कम होकर अनावश्यक द्रव्य बाहर निकालने में मदद होती है.

चुंबक जल से स्त्रियों का मासिक धर्म नियमित होकर इससे रक्त वाहिनियों के प्रवाह की अड़चन दूर हो रक्ताभिसरण ठीक होता है, इससे हृदय का कार्य सुलभ होता है.

मूत्रपिंड-दोष भी चुंबक जल से दूर होते हैं. मूत्र सुलभता से होता है. यदि किसी का मूत्र रुक गया हो तो 2 औंस चुंबक जल तथा 2 औंस सादे पानी का मिश्रण प्रति 5-7 मिनट से 8-10 बार पिलाने से उसको शीघ्र ही पेशाब होता है. वह प्रयोग रशिया में लेनिनग्राद के 10 दवाखानों में किया गया है.

चुंबकीय दूध से अशक्ति दूर होकर कुछ लैंगिक विकारों का भी निवारण होने में अच्छी मदद मिलती है.

चुंबक जल गाय-भैंस को पिलाने से उनका दूध बढ़ता है ऐसा अनुभव डॉ. उमाले, पंजाबराव कृषि विद्यापीठ, अकोला को आया है. इतना ही नहीं यदि फसल को चुंबकीय जल दिया गया तो अच्छी फसल आती है. अनुभव के आधार पर कुछ.

"चुंबक साधन साहित्य" तैयार किये हैं जो उपलब्ध है—

1. बड़ी चुंबक जोड़ी—चुंबक जल बनाने में उपयोगी और सभी बीमारियों में इसका उपयोग किया जाता है.

2. छोटा चुंबक "(सरेमिक जोड)" सिरदर्द, आंख का दर्द, टॉन्सील, नाक का विकार" (सायनस)"गले के विकार, अनिद्रा, वृद्धि-विकार तथा कर्ण रोग, ऊंचाई बढ़ाना" (20-22) साल की उमर तक).

3. चुंबकीय रोलर-शरीर में किसी भी वेदना स्थान पर फिराया जाता है.

4. रक्त दाब पट्टा (ब्लड प्रेशर बेल्ट) हाई ब्लडप्रेशर में सीधे हाथ पर लो ब्लडप्रेशर दायें हाथ पर बांधा जाता है.

5. घुटने तथा गले का पट्टा—घुटने के दर्द में उपयोगी स्पॉंडेलायटीस के दर्द में उपयोगी.

6. कमर पट्टा—मोटापा कम करने के लिए.

7. सिर का पट्टा—सिर दर्द, मस्तिष्क में जमा रक्त गांठों को पिघलाने के लिए.

8. सिर की टोपी—मस्तिष्क में खून का जमाव हटाने के लिए

9. मोती की माला—स्त्रियों के छाती के विकार पर.

10. चुंबकीय टिकली—सिर दर्द, चेहरे के मुंहासों पर चेहरे की कांति बढ़ाती है.

11. स्फटिक, रुद्राक्ष व चुंबक माला—ब्लडप्रेशर, डायबिटीस व हृदय विकार पर उपयोगी.

12. व्हीटीक मशीन—ब्लड प्रेशर, उदासीनता, शरीर दुर्बलता, हृदय धड़पड़, मधुमेह, संधीवात, क्रोध, बुखार, तारुण्य रक्षण, निद्रानास, शारीरिक व मानसिक दुर्बलता में उपयोगी.

13. मैग्नेटिक हिलर—दमा, शरीर के वेदना के स्थान पर लगाने के लिए एवं हृदय विकार पर.

14. मैग्नेटीक फुट रोलर.

15. रोप मसाजर—पीठ दर्द, कमर का दर्द इत्यादि.

नोट : चुंबक को धागा बांधने के बाद हवा में लटकाने से जो ध्रुव उत्तर की ओर आकर्षित होता है उसको मैंने दक्षिण ध्रुव माना है और दक्षिण की तरफ आकर्षित होने वाले को उत्तर ध्रुव माना है. यही अमेरिकन प्रणाली है. इसी आधार पर हमारा सारा साहित्य बना है. अमेरिका के अल्बर्ट रॉय डेविस रिसर्च लेबोरेटरी की रिपोर्ट के अनुसार ज्यादा पावरफुल चुंबक लगाने से शरीर को हानि होने की संभावना रहती है लेकिन मीडियम पॉवर और कम पॉवर के चुंबक लगाने से शरीर को अच्छा फायदा पहुंचाता है.

पता : पूनमचंद राठी (चुंबक चिकित्सक) राऊतवाडी 5 नं. स्कूल के पीछे, "अभिनंदन" बिल्डिंग के पास, अकोला, अकोला-444005.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों की बचत एवं सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती-पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना शुल्क आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भिजवा दें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

शुल्क की रियायती दरें :—

वार्षिक : 80 रुपये

अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम ....

पता....................

....

....

....

हस्ताक्षर ....

शुल्क तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :
प्रसार अधिकारी,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुर शाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अनोखा अंक

आदमी कितना पढ़े. . . कितना पढ़े कि सब कुछ जान जाये...?

सवाल आसान है, मगर जवाब मुश्किल, फिर भी कोई सधा-सधाया हल मिल सकता हो तो बुरा क्या है?—समाज और जीवन में पढ़ाई के संदर्भों को समझ पाने के लिए इस बार पढ़िए—

अमरकांत, कर्तार सिंह दुग्गल, सच्चिदानंद धूमकेतु, सावित्री परमार, प्रियंवद, निर्मल कुमार आदि की कहानियां

- **आते हुए लोग**
  — **विकास कुमार झा** की कहानी : कुचरने दो कागा को
- **मानसरोवर**
  —**गोविंद मिश्र** का उपन्यास अंश
- **पीढ़ियां : आमने-सामने :** कहानी आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर जा रही है. . .
  —**भीष्म साहनी, कर्ण सिंह चौहान, नमिता सिंह, रमेश उपाध्याय की समकालीन कहानी पर गौरतलब बातचीत.**
- **देहरादून रे देहरादून!**
  —**रवींद्रनाथ त्यागी** का व्यंग्यात्मक रिपोर्ताज

- **मथुरादास की डायरी** ● **तुलसीदास चंदन घिसैं!**
- **भरतमुनि के वंशधर : सागर सरहदी से बातचीत.**
- **तस्वीर बोलती है, पखवारे की पुस्तकें, और भुलाये न बने, लघुकथाएं, लोक-कथाएं, ग़ज़लें, हलचल आदि सभी स्थायी स्तंभ**

सारिका

1-15 नवंबर, 1984

इसे कहते हैं पूरे परिवार की पत्रिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar